Regd. No. 21747 ISSN 2277-2014

Research Discourse

An International refereed research Journal

Vol. IV No. 1 January-March 2014

Editor
Dr. Anish Kumar Verma

Associate Editors

Dr. Rajeev Kumar Tripathi
Dr. Santosh Kumar Tripathi

Published by :
South Asia Research & Development Institute
Varanasi, U.P. (INDIA)

Patron
Dr. Lalji Tripathi, Mariahu P.G. College, Mariahu, Jaunpur, U.P.
Ex. Prof. Gurudin, M.G.K.V.P., Varanasi, U.P.

Editorial Board

Prof. Munnilal, Varanasi, U.P.
Prof. Shri Bhagwan Rai, Varanasi, U.P.
Dr. Deenbandu Tiwari, Varanasi, U.P.
Dr. Rekha, Varanasi, U.P.
Dr. Rajneesh, Varanasi, U.P.
Dr. Anju Sihare, M.P.
Dr. Ramesh Kumar, Hariyana.
Dr. Suresh Kumar Singh, Jaunpur, U.P.
Dr. H.C. Purohit, Jaunpur, U.P.
Dr. Anjaneya Pandey, Jaunpur, U.P.
Dr. Kaushal Kishor, Bihar
Anna Malingdog (Philippines)
Shoir Ajore (Phillistin)

Advisory Board
Prof. Renuka Kumari Sinha, Bihar.
Prof. Vasant S. Ghule, Maharastra.
Dr. Rakesh Kumar Maurya, Varanasi, U.P.
Dr. Sushil Kumar Gautam, Varanasi, U.P.
Dr. Anurag Mishra, Jaunpur, U.P.
Dr. Chiranjeev Kumar Thakur, Varanasi, U.P.

© Editor

Published by :
South Asia Research & Development Institute
B. 28/70, Manas Mandir, Durgakund
Varanasi-221005, U.P. (INDIA)
Email : researchdiscourse2012@gmail.com
Mob. 09453025847, 08687778221
'Research Discourse': An International refereed research Journal, Published Quarterly.

Note: ***Scholars will be answerable to the contents of their articles. All disputes and complaints are subject exclusively to the Jurisdication of the courts/tribunals/forums at Varanasi Only.***

lEikndh;

भारतीय समाज और संस्कृति में स्त्री के प्रति हिंसा की अनवरत श्रृंखला सदियों से विद्यमान है। गौरतलब है कि जिस तरह पुरुषों के हाथ स्त्री शोषण की घटनाएँ कठोर वास्तविकता है, उसी तरह स्त्री के विरूद्ध स्वाभाविकता में वैरभाव निभाने वाली स्त्रियों की भी कमी नहीं है। वे अपने पुरुषों के दमन का विवश या अनिवार्य बचाव करती है। वास्तव में इसका मूलकारण भारतीय संस्कार ही प्रतीत होता है कि महिलाएँ ही महिलाओं के शोषण की भूमिका में अधिकांशतः नज़र आती है।

प्रस्तुत अंक के अशुद्धियों को शुद्ध करने के लिए Mk0 fnu’k dekj] Mk0 i#"kkÙke yky fot; एवं अनन्य मित्र Jh vui dekj ^Jfed*] Jh idt flg एवं Jh fjr’k oek के प्रति हृदय से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। प्रस्तुत अंक में रह गयी त्रुटियों के लिए हम सभी पाठकों से क्षमा प्रार्थी है।

अन्त में, सभी लेखकों, पाठकों एवं अन्य विद्वतजनों के प्रति हृदय से आभार प्रकट करते हुए उनसे सुझाव, सहयोग एवं आशीष की कामना करते है।

lEiknd

fo"k;&lph

1- ekuokf/kdkj ,oa i;kZoj.k 1&4
डॉ0 अलका शर्मा

2- tkuiij tuin dk iwoZ bfrgkl;xhu lkLÑfrd vuØe % ,d ,frgkfld v/;;u 5&7
डॉ0 राम सिंह

3- iwepUnkÙkj fgUnh miU;kl ka e uk jh pfj= dk fofo/k vk;ke 8&12
डॉ0 भावना जोशी पाठक

4- nfyr lkfgR; esa Lokuqbkfr o lgkuqHkfr 13&15
डॉ0 संदीप कुमार मिश्र

5- tul[;k vkj vkfFkZd fodkl 16&18
डॉ0 सुनील कुमार

6- Hkkjr esa uo&tkxfr gsrq f'k{kk dh vifjgk;Zrk 19&21
डॉ. विजय कुमार चतुर्वेदी

7. d'ehjh 'kSoer dk fodkl ,oa bfrgkl 22&24
डा0 बृजेश कुमार यादव

8- egkRek xka/kh vkj MkO Hkhe jko vEcsMdj ds vLi`';rk lac/kh fopkj% ,d v/;;u 25&28
सुबोध गिरी

9- ykdrkf=d 'kklu 0;oLFkk ikphu Hkkjr ds fo'k"k lUnHkZ esa 29&32
जयवर्धन

10- bfrgkl fo'y"k.k esa lajpukRed fl)kUrksa dh Hkfedk 33&37
डॉ. विनीत कुमार गुरू

11. Lokra=;ksŸkj fgUnh miU;klka esa xkE; lLd`fr % iztkc ds fo'k"k lUnHkZ esa 38&41
डॉ. श्रीमती भारती

12- xkeh.k ykd lLÑfr ds ijaijkRed Lo:ik dk fo'y"k.kkRed v/;;u 42&45
डॉ0 राजकुमार मिश्रा

13- Xykscy okfeZx&,d Hk;kog fLFkfr 46&48
डॉ0 रामकृष्ण पाण्डेय

14- xhrk ds 'kSf{kd n'kZu dh orZeku ;qx esa vko';drk 49&51
शिखा तिवारी
शिवा शुक्ला

15. iwoZ ek;ZdkYhu nkl iFkk 52&56
डॉ. सुरजीत सिंह भदौरिया

16- gfj;k.kk jkT; ds ikuhir ftys esa lo&f'k{kk vfHk;ku ds fØ;kUo;u dk leh{kkRed v/;;u 57&60
अशोक कुमार यश शर्मा

17- _Xosn esa _r dh vo/kkj.kk 61&68
डॉ0 प्रभात कुमार सिंह

18- Hkwe.Myhdj.k vkj f'k{kd f'k{kk dh ofj'od pquksfr;k 69&71
संतोष कुमार सिंह
डॉ0 विवेक सिंह

19- tuek/;e vkj lkLd`frd igpku 72&75
शिखा शुक्ला

20- Hkkjrh; lekt esa LorU=rk iwoZ efgykvksa dh fLFkfr ,oa mlls lEcfU/kr ikfo/kku 76&78
मंगला प्रसाद पटेल

21- ikphu 'kf{kd dUn d lnHk e
ck) l?kk ,o fogkjk dh iHkko'khyrk 79&82
श्यामू श्रीवास्तव
22- dugj oflu ¼NŸkhlx<½ e ty
iokg i.kkyh% ,d v/;;u 83&85
डॉ0 जय प्रकाश शुक्ल
23. Malaviyaji Ji Vision For Technical Education **86-88**
Vivekanand Gupta
24. Humanistic Social Science **89-91**
Anil kumar
25. 'Indigenous' Healing Systems and Perceptions on Leprosy **92-96**
Manmohan Krishna
26. Effect of Co-curricular Activities on Students **97-100**
Dr. Lubhawani Tripathi
27. The Attitude of Main Political Parties of India Towards Election **101-103**
Dr. Pravita Tripathi
28. Domestic Violence Against Women's In India: A Study **104-107**
Rakesh Choudhary
Manish Kaithwas
Gaurav Rana
29. Value Education in Indian Wanghmay **108-112**
Rajesh Kumar Sharma
30. Goods and Services Tax (GST)-A step forward (A Fantasy Evaluation) **113-116**
Dr. Lal Baboo Jaiswal
31. Indian Rural Banking (Emerging Trends and Challenges Role of Regional Rural Banks) **117-120**
Dr. Rajay Kumar Singh
32. Use of Sources by Research Scholar of Allahabad Central University Library: A study **121-126**
Sugriv Singh
Dr. M.P. Singh
33. Feminist Some Great Thinker's of Indian Origin **127-129**
Dr. Rahul Gupta
34. Human rights' Security of Rural Dalit Women: The Challenges Ahead **130-133**
Tanu Prakash
35. Socio Economic Impact of Micro Finance in Rural Transformation of Uttarakhand an Empirical Study with Special Reference to Pithoragarh Districts in Kumaon Region of Uttarakhand **134-137**
Dr. Deepa Rawat
36. Impact of E-advertising on Consumers' Willingness **138-142**
Dr. Ajit Kumar Shukla
37. Arresting the right Equilibrium: Tradition and Innovation in *The Waste Land* of T.S.Eliot **143-147**
Dr. Abhishek Tiwari
38. Socialist Feminism : An Analytictical Study **148-150**
Dr. Anish Kumar Verma

ekuokf/kdkj ,o i;kZoj.k

MkW0 vydk 'kekZ*

मानवाधिकार (Human Right) शाब्दिक दृष्टि से कितना भी सीधा, सरल एवं सहज लगता हो, पर वास्तव में इस शब्द की अपनी गरिमा है। कोई भी व्यक्ति चाहे कहीं भी, किसी भी देश में रहता हो उसे कुछ मूलभूत संरक्षण विरासत में मिलता है। अधिकार एक ऐसा लाभ है जिसे नैतिक अथवा कानून के नियमों से पहचान एवं सुरक्षा मिलती है। यह एक ऐसा स्वत्व है जिसकी अवहेलना कानून विपरीत मानी जाती है अतः अधिकार मनुष्य के जीवन के लिये अहम बने हैं। अधिकार शब्द को परिभाषित करते हुये हैराल्ड लॉस्की ने कहा है–''अधिकार मानव जीवन की ऐसी परिस्थितियां हैं जिनके बिना सामान्यतया कोई व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नहीं कर सकता।[1]''

ऐसे ही अधिकार जो मानव जाति की चहुंओर से सुरक्षा करें मानव अधिकार कहलाते हैं। इनके बिना मानव अपने व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के बारे में सोच भी नहीं सकता। ये मानव में मानव होने के नाते (फलस्वरूप) अन्तर्निहित है। अतः मानव अधिकार से तात्पर्य ''किसी व्यक्ति के जीवन (Life) उसकी स्वतंत्रता, समानता और प्रतिष्ठा संबंधी उन अधिकारों से है जिन्हें संविधान से मान्यता प्राप्त हो।[2]''

मानव अधिकार शब्द का प्रयोग इसकी सार्वभौम घोषणा के साथ ही 1948 ई0 में किया गया जो मूलतः 18वीं शताब्दी के मानव का अधिकार का पुनः प्रवर्तन कर बनाया गया। इससे पूर्व परम्परागत रूप से 'मानवाधिकार' को अहस्तान्तरणीय अधिकार/अन्य को न परिवर्तित अधिकार/प्राकृतिक अधिकार या मानव के अधिकार कहा था।

'मानव अधिकार' क्षेत्र के मुख्य बिन्दुओं को निम्न दो भागों में बांटा गया है :–

d½ izR;sd dk vf/kdkj g\S&

1. जीवन, स्वतंत्रता और सुरक्षा।

*असिस्टेन्ट प्रोफेसर, पं0 पूर्णानन्द तिवारी राजकीय महाविद्यालय, चौखुटा, दोषापानी, नैनीताल, उत्तराखण्ड

2. प्रत्येक स्थान पर सम्मान।
3. आने जाने की स्वतंत्रता।
4. राष्ट्रीयता।
5. विचार अन्तरात्मा और धर्म की स्वतंत्रता।
6. शांतिपूर्ण ढंग से कहीं भी उठने और बैठने की स्वतंत्रता।
7. अपने देश की गतिविधियों में भाग लेना।

[k½ dkbZ Hkh O;fDr ihfM+r ugha jgsxk &

1. अत्याचार और उत्पीड़न से।
2. गुलामी के जीवन से।
3. कैद में रोके जाने में अथवा देश से निष्कासन की सजा से।

संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वावधान में ऊपर वर्णित बिंदुओं को आधार मानते हुये 10 दिसम्बर 1948 को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर एक घोषणा पत्र जारी किया गया जिसे विश्व के सभी देशों ने स्वीकार किया।

इस प्रकार मानव अधिकार वे मौलिक अधिकार हैं जिनसे –

– अपनी स्वतंत्रता और सुरक्षा
– परस्पर सहयोगियों से उत्तम सामंजस्य
– समाज के प्रति निष्ठा और
– देश के प्रति कर्तव्य बोध की पूर्ति होती है।

ये अधिकार किसी भी देश की आन्तरिक एवं बाह्य दोनों क्षेत्रों की गरिमा में वृद्धि करते हैं और भारतीय संविधान के अनुच्छेद 32 के अनुसार मनुष्य के जीवन और रहन सहन की गुणवत्ता में सुधार लाने में सहायक होते हैं।

जब हम पर्यावरण के क्षेत्र में मानव अधिकार की बात करते हैं, तो मस्तिष्क में सर्वप्रथम स्वच्छ वायु एवं जल तथा पौष्टिक भोजन की उपलब्धि ही प्राथमिक आवश्यकताओं के रूप में हमारे सामने आती है। मानव अधिकारों के सार्वभौमिक घोषणापत्र के अनुच्छेद 3 में वर्णित अधिकार के अनुसार–''प्रत्येक को जीने, स्वतंत्रत रहने व सुरक्षा बनाये रखने का अधिकार है।[3]'' परन्तु विभिन्न प्रकार के प्रदूषण (वायु, जल, ध्वनी, मृदा) परिस्थितिय असंतुलन, अनियंत्रित जनसंख्या व प्रदूषित पर्यावरण मानव के इस अधिकार का दोहन करने में लगे हैं। यदि हम इनके कारणों पर दृष्टिपात करें तो पाते हैं कि अपने इस अधिकार का हनन स्वयं मानव जाति ही कर रही है। आज आधुनिकता की अंधा धुंध दौड़ भोग–विलास के साधनों का अनुचित तरीके से उपयोग ही दूषित पर्यावरण का मुख्य कारण है।

औद्योगिक क्रांति ने प्रदूषण को जन्म दिया। बढ़ती जनसंख्या ने प्राकृतिक एवं अन्य संसाधनों का इस सीमा तक शोषण किया कि व्यक्तिगत कुछ पा लेने की होड़ से आम आदमी का जीवन दूभर हो गया। वनों के विनाश ने ऋतु चक्र को गड़बड़ा दिया। वर्षा कम होने लगी अकाल पड़ने लगा। चारे की कमी ने पशुधन को हानि पहुंचायी। प्रकृति के असंतुलन से पर्यावरण विकृत हो गया। जल, वायु, भूमि, सभी प्रदूषित होने लगे।

वायु प्रदूषण (जिसमें प्रदूषक मुख्यतया गैस होती है तथा कुछ ठोस सूक्ष्म कण होते हैं) घरेलू ईधन के दहन से वाहनों से निकलने वाले उत्सर्ग, सड़े–गले पदार्थ और कूड़े–करकट से निकलने वाली गैसों तथा विभिन्न प्रकार के उद्योगों के संयत्रों की चिमनियों से निकलने वाले धुएं से होता है। इस विभिन्न प्रदूषकों की संख्या अनगिनत है और ये अलग–अलग प्रकार से स्वास्थ्य को हानि पहुंचाते हैं। ग्लोबल वार्मिंग (विश्व तापन) अम्लीय वर्षा, ओजोन पर्त का क्षरण तथा स्मोग इत्यादि वायु प्रदूषण जनित कुछ ऐसी ज्वलंत समस्याएं हैं जिनसे आज पूरा विश्व जूझ रहा है।

लॉ सोसायटी आफ इण्डिया बनाम फर्टिलाइजर्स एण्ड कैमिकल्स त्रावनकोर के प्रकरण में केरल के उच्च न्यायालय के द्वारा स्वच्छ पर्यावरण को 'जीने के अधिकार' का एक अंग माना है। न्यायालय का यह मत है कि –''मानव देह एवं स्वास्थ्य के लिये पर्यावरण अपरिहार्य है।[4]'' इसके लिये हमारे देश की स्थानीय निकायों पर यह दायित्व डाला गया है कि वे ग्रामों, शहरों तथा नगरों की स्वच्छता की सुचारू व्यवस्था करें तथा पर्यावरण को स्वच्छ रखने का पूरा प्रयास करें। निकायों का इस दायित्व से विमुख होना मौलिक अधिकार तथा मानवाधिकार का उल्लंघन है। इसके अतिरिक्त उद्योगों तथा कारखानों के द्वारा भी पर्यावरण को प्रदूषित नहीं किया जा सकता है। अब तो यह कानून भी बन चुका है कि यदि पर्यावरण सुरक्षा को उसके संरक्षण के लिये उद्योग धंधों को भी बंद करना पड़े तो ऐसा किया जा सकता है।

भारत के विभिन्न कानूनों में भी पर्यावरण के पर्याप्त सुरक्षा सम्बन्धी प्रावधान किये गये हैं। देश के संविधान के अनुच्छेद 5 क में यह व्यवस्था की गयी है कि ''भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह प्राकृतिक पर्यावरण की जिसके अन्तर्गत वन, झील, नदी और अन्य वन्य जीव रक्षा करें और उनको संवर्धन करें तथा प्राणी मात्र के प्रति दया भाव रखें।[5]''

भारतीय संसद के द्वारा पर्यावरण संरक्षण हेतु समय–समय पर कई अधिनियम पारित किये गये हैं। 1974 का जल अधिनियम (प्रदूषण, निवारण

तथा नियंत्रण) तथा 1986 का पर्यावरण संरक्षण अधिनियम इसमें प्रमुख हैं। इन अधिनियमों में जल, वायु एवं पर्यावरण प्रदूषण के निवारण संबंधी महत्वपूर्ण और प्रभावी उपबन्ध किये गये हैं।[6]

संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि पर्यावरण मानवाधिकारों का एक अभिन्न अंग है। मानवाधिकारों के संरक्षण के लिये पर्यावरण का संरक्षण आवश्यक एवं अपरिहार्य है। प्रत्येक व्यक्ति का यह विधिक ही नहीं अपितु नैतिक कर्तव्य भी है कि वह वायु, जल, वन, वन्यजीव तथा सम्पूर्ण पर्यावरण से जुड़ी हुयी प्रत्येक स्थिति के संरक्षण का प्रयास करे। जिससे मानव की आगे आने वाली पीढ़ियों को स्वच्छ वातावरण में सांस लेने का अवसर मिल सके। पर्यावरण को स्वच्छ रख कर ही हम राष्ट्र स्तर पर एवं विश्व स्तर पर अपने 'जीने के अधिकार' तथा अन्य मानवाधिकारों को सुरक्षित रख पायेंगे।

lanHkZ %

1. J.J. Ram Upadhaya; Human Right P. 11
2. International Human Right : Alison Dundes Renteln Sag Publications, London, 1990 P.P. 203.
3. राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की वार्षिक रिपोर्ट, 1996–1997।
4. राजस्थान पत्रिका, 19 जनवरी 2003
5. डॉ0 जी0पी0 नेमा एवं डॉ0 के0के0 शर्मा, मानवाधिकार – सिद्धान्त एवं व्यवहार
6. डॉ0 एम0के0 गोयल, पर्यावरण अध्ययन

*****

tkuij tuin dk io bfrgkl ;xhu lkLÑfrd vuØe % ,d ,frgkfld v/;;u

Mk0 jke flg*

lkjk'k %

प्रस्तुत शोध पत्र ऐतिहासिक शोध प्रणाली पर आधारित है जो जौनपुर जनपद का पूर्व इतिहास युगीन सांस्कृतिक अनुक्रम का गहन व सूक्ष्म विश्लेषण को प्रस्तुत करता है। अध्ययन से रोचक व महत्वपूर्ण, सारगर्भित संकेत मिलते है। आज आवश्यकता है समुचित प्रयास से जौनपुर जनपद का नवीन इतिहास लेखन किया जाय।

जौनपुर का प्रारम्भिक–ऐतिहासिक काल का विवरण पौराणिक साक्ष्यों पर आधारित है, जिसकी अभी ऐतिहासिक और पुरातात्त्विक साक्ष्यों से पुष्टि होने की भी आवश्यकता है। इतिहास काल के पूर्व (600 ई0 पूर्व के पूर्व का) इतिहास को जानने के लिए, जिनके लिए एक मात्र स्त्रोत पुरातात्त्विक सामग्रियां है।

इस जनपद की इतिहास पूर्व युग की संस्कृतिक्रमेण पाषाण–काल से मध्य पाषाणकाल, ताम्र पाषाण काल व एन0बी0पी0 संस्कृति के रूप में देखा जा सकता है।[1]

अब तक के सर्वेक्षण रिपोर्टो एवं अन्य सामग्रियों के आलोक में तथा समीपवर्ती एवं मध्यगंगाघाटी की सम्पूर्ण पूर्व इतिहास युग की संस्कृतियों के सापेक्ष में इस जनपद के पूर्व इतिहास युग को निम्न सांस्कृतिक अनुक्रम में रखा जा सकता है[2] :

1. मध्य पाषाण संस्कृति
2. ताम्र पाषाणकालिक संस्कृति

यह एक ज्वलन्त प्रश्न है कि मध्यगंगाघाटी के पश्चिमी भाग में जहाँ से मध्य पाषाणिक संस्कृतियों के व्यापक प्रमाण मिले हैं, वहां से अभी तक नव

*एसि0 प्रो0, मड़ियाहूँ पी. जी. कालेज, मड़ियाहूँ, जौनपुर, उ0प्र

पाषाणिक उपकरण नहीं प्राप्त होते है।[3] यह या तो सर्वेक्षण की कमी अथवा अन्य कोई कारण हो सकता है। जौनपुर में भी अभी तक किसी भी क्षेत्र में नव पाषाणिक स्थल प्रकाश में नही आए है। जौनपुर जनपद के अनेक क्षेत्रों से पाषाणकालिक एवं उत्तरवर्ती काल के (इतिहास पूर्व युग के) प्रमुख संस्कृतियों का विवेचन निम्नानुसार किया जा सकता है:–

e/; ik"kk.kd lLdfr

जौनपुर जिले में अनुसंधान से अब तक चौदह मध्य पाषाण कालीन स्थल प्रकाश में आये है। जिनमें ग्यारह स्थल प्रारंम्भिक मध्य पाषाणकाल तथा तीन परवर्ती मध्य पाषाणकाल से सम्बन्धित है। कुल 453 उपकरण समूहों में 55 (12-53%) ज्यामितिय और 398 (87-63%) अज्यामितिय उपकरण है। कुछ स्थ्लों से अपरिष्कृत फलक प्राप्त हुये है लेकिन उनमें से कुछ ज्यामितिय आकार के उपकरण भी हैं। आठ स्थलों में कोई भी ज्यामितिय उपकरण प्राप्त नही हुए हैं। पांच स्थलों में केवल एक–एक ज्यामितिय उपकरण प्राप्त हुए हैं। पूरे गम्भीर शाह स्थल एक अपवाद है जहां 50 ज्यामितिय उपकरण और 294 परिष्कृत और अपरिष्कृत उपकरण मिले है प्रमुख उपकरण परिष्कृत धार तथा नोक वाले है।

rke ik"kk.kd lLdfr vkj ikjfEHkd bfrgkldkyhu lkLdfrd vuØe

इलाहाबाद विश्वविद्यालय एवं बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा समय–समय पर किये गये सर्वेक्षणों से सतह पर ही अनेक पात्र–खण्ड प्रतिवेदित हुए है। इन स्थलों में बदलापुर तहसील में स्थित एकहुँआ स्थल ताम्र–पाषाणिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इस स्थल की खोज 1980 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग के डॉ0 जे0एन0 पाल, श्री बी0बी0 मिश्र एवं डॉ0 मानिक चन्द्र गुप्ता आदि ने की थी। यहाँ इसी से सटा हुआ स्थल कल्याणपुर एवं केवटली है। यहाँ से मेसोलिथिक उपकरणों के बाद लाल बर्तन (रेउ वेयर) एवं एन0बी0पी0डब्ल्यू0 के बर्तन प्राप्त हुए हैं। सई नदी के तट पर रायबरेली और प्रतापगढ़ जनपदों में कई महत्वपूर्ण आवास प्रकाश में आये हैं जहाँ से प्राक् एन0वी0पी0 पात्र परम्परा के बर्तन और सामग्रियाँ प्राप्त हुई है जो इस स्थलों के दीर्घ काल तक आबाद रहने के प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। जौनपुर तहसील में जफराबाद स्थल से एन0बी0पी0डब्ल्यू0 और प्राक् एन0बी0पी0डब्ल्यू0 पात्र–परम्परायें काफी संख्या में प्राप्त हुई है। इसी प्रकार अनेक स्थल है। जैसे– माझीपुर की कोट, बजरा टीकर आदि।

जौनपुर जनपद में अनेक एन0बी0पी0डब्ल्यू0 स्थलों की खोज समय–समय पर शोधार्थियों एवं विद्वानों द्वारा की गयी है। इनमें से जो स्थल अब तक प्रकाश में लाये गये हैं, उनमें रजलहा, चाँदी डीह डीहा, डिहवान, डीह दरारी, काइरान, गजहर मऊ, गस, गोपालपुर, राजा का किला, रैनाडीह, सरॉय, नदियानासा, कोटा बरही, मड़वाडीह और नमफेरा है।[4]

उल्लेखनीय है कि मध्यगंगाघाटी के अन्य ताम्र पाषाणिक या पूर्व इतिहास युगीन सांस्कृतिक अनुक्रम की ही तरह जौनपुर जनपद में भी सर्वेक्षण के दौरान संस्कृतियों के अनुक्रम का आभास मिलता है। जौनपुर जनपद से प्राप्त यदि सभी स्थलों से प्राप्त सामग्रियां का यदि एक सांस्कृतिक अनुक्रम निर्धारित करे तो क्रमशः रेड वेयर, ताम्र निधियों एवं उनके साथ प्राप्त उपकरण, ब्लेक वेयर, ब्लैक ऐंड रेड वेयर, ग्रे वेयर और एन0 बी0 पी0 डब्ल्यू पात्रों को रखा जा सकता है।

संक्षेप में, प्रस्तुत अध्ययन जौनपुर जनपद के महत्वपूर्ण पक्ष को रेखांकित करता है जो भारतीय समाज व इतिहास के ज्ञान को समृद्ध करता है।

lUnHkZ %

1. लाल, बी0बी0 और दीक्षित के0एन0 1997; श्रृंगवेदपुर ए साइट आफ प्रोटो हिस्टारिक पीरिएड, इण्डियन प्री हिस्ट्री 1980 (सम्पा0) मिश्र, वी0डी0 एवं पाल जे0एन0।
2. शर्मा, जी0आर0 और अन्य 1980; हिस्ट्री ऐंड आर्कियोलॉजी, इलाहाबाद, पेज 5–12
3. यद्यपि डी0पी0 शर्मा को कुछ नियोलिथ प्रतापगढ़ जनपद के पट्टी तहसील से प्राप्त हुए हैं। परन्तु इन उपकरणों का अपने सन्दर्भ में प्राप्त न होने के कारण प्रमाणिकता संदिग्ध है।
4. सिंह ए0के0 1993; स्टडी आफ मैटेरियल कल्चर आफ द गंगेटिक प्लेन इन न फर्स्ट मिलियन बी0सी0, पी0एच0डी0 उपाधि के लिए प्रस्तुत अप्रकाशित शोध प्रबन्ध बी0एच0यू0 वाराणसी।

*****

izepUnksÙkj fgUnh miU;klksa esa ukjh pfj= dk fofo/k vk;ke

MkW0 Hkkouk tks'kh ikBd*

प्रेमचन्दोत्तर लोक समाज में नारी के उत्थान और कल्याण का स्वर ही अधिक मुखरित हुआ है तथा नारी को पुरुष के समान अधिकार भी मिला है। गृहक्षेत्र से कार्यक्षेत्र में नारी का पदार्पण और नारी को केन्द्रस्थ कर उससे सम्बद्ध विभिन्न समस्याओं का चित्रण उपन्यासों का विषय बने हैं। प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों ने विशाल फलक पर नारी–चरित्रों को बिम्बित किया है। नारी की मान्यताओं, अवधारणाओं और मानसिकताओं के बदलते स्वरूप से जो नारी चित्र उभर रहे हैं, वे जीवंत और सम्पूर्ण रूप से वास्तविक प्रतीत होते हैं। इनमें अनेक प्रकार से परम्परागत आदर्श मातृरूप पत्नी रूप, भगिनी, सास–बहू तथा अन्य रूपों का वर्तमान परिस्थितियों से प्रभावित स्वरूप पर प्रकाश पड़ा है, जिसमें मानवीय संवेदना के साथ युगसंवेदना का भी मेल हो गया है।

'उकाव' की श्यामा के रूप में माँ का अदम्य साहस, अनवरत कठोर संघर्ष सामने आता है। अपने पुत्र सिब्बू के लिए श्यामा अनेक मुसीबतों का सामना करती है। वर्तमान समय में माँ–पुत्र के संबंधों में भी गिरावट हुई है, जिसे 'रतिनाथ की चाची' उपन्यास में स्पष्ट महसूस किया जा सकता है। इस उपन्यास के उमानाथ की माँ ऐसी ही नारी है, जो मेहनत, मजदूरी करके, चर्खा चलाकर अपनी रोजी–रोटी चलाती है, परन्तु उसका बेटा माँ का सहारा बनने के बजाय अपनी माँ को पीड़ित करता है। गोपुली, ('गोपुली–गफूरन'), सलोना (जल टूटता हुआ'),गोमती व उसकी माँ ('कगार की आग'), खुर्शीद ('कथा सतीसर') आदि नारियां उदारमना, ममतामयी, परम्परावादी हैं, जिनमें एक सहनशील परम्परागत नारी के दर्शन होते हैं।

परिवार शिशु की प्रथम पाठशाला है। इस पाठशाला में बहन बेटियों को व्यक्तिगत बनाने के नुस्खे नहीं सिखाए जाते वरन् उन्हें विवाहोपरान्त

*प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, रा0 महाविद्यालय, भिकियासैंण, अल्मोड़ा

भविष्य के लिए तैयार किया जाता है। उसे सम्बन्धों को बनाने व निबाहने की शिक्षा दी जाती हैं।

'गोबर–गणेश' की सरू या सरोज विनायक की बड़ी बहिन है, पर उसके आचरण, व्यवहार और व्यक्तित्व में ऐसा आत्मसंयम और संतुलन, ऐसी प्रौढ़ता है समझदारी है जो उसकी उम्र से ज्यादा लगती है। 'उस चिड़िया का नाम' उपन्यास की रमा के रूप में हम एक आदर्श पुत्री और बहिन को देख सकते हैं। ''वह अपने पिता के कारण ही डॉक्टरी पढ़ने विदेश नहीं जाती, विजातीय नायडू से विवाह भी नहीं करती, पिता की मृत्यु से वह बहुत आहत होती है।''[1] 'श्मशान चम्पा' उपन्यास की चंपा एक भावुक सहनशील, संयमी, लोकानुकूल पुत्री के रूप में द्रष्टव्य है। माँ की गिरती सेहत के प्रति चंपा उद्विग्न हो उठती है। "यह क्या ममी, तुम्हें तो बड़ा तेज बुखार है, तुमने कुछ बताया भी नहीं, तुम हमेशा मुझे ऐसे ही बहका देती हो।"[2] वही 'सागर, लहरें और मनुष्य' की रत्ना अपनी माँ वंशी के गुणों से प्रभावित है। माँ की तरह बेटी रत्ना में भी चमक–दमक से भरे जीवन की चाह है और यही चाह उसके पतन का कारण भी बनती है।

संयुक्त परिवार प्रथा भारतीय समाज की विशेषता रही है। संयुक्त परिवार में सम्बन्धों का महत्वपूर्ण स्थान है। सास–बहू, जेठानी–देवरानी, ननद–भाभी के रिश्ते नारी सम्बन्धों के निर्वाहक हैं। 'उत्तरकथा' उपन्यास में सास शोषक की भूमिका में आयी है। ''दुर्गा की सास श्रीमती कृष्णादेवी अपने एकमात्र पुत्र त्रयंबक की पहली पत्नी को कुएँ में धक्का देकर मार चुकी है और पुत्र की दूसरी पत्नी दुर्गा को भी उत्पीड़ित करती है।''[3]

'कथा सतीसर' उपन्यास में स्त्री–समाज का परम्परागत ठेठ रूप उजागर हुआ है। स्त्री को हर उम्र और हर हाल में पुरुष पर निर्भर रहने की जो सोच प्रदान की थी, उसका उत्तम नमूना अयोध्यानाथ के परिवार की स्त्रियां हैं। इसी उपन्यास की विजया आदर्श पत्नी और सुसंस्कृत बहू है, वह अपने परिवार और सास का ध्यान रखती है। इस प्रकार संयुक्त परिवार में पहले ये सम्बन्ध परिवार को एक सूत्र में बाँधकर समाज में उसकी प्रतिष्ठा का आधार बनते थे जो व्यक्ति की वैयक्तिक चेतना के विकास के साथ उसके लिए बंधन और बाधक प्रतीत होने लगे, इसके साथ ही सम्बन्धों के बिगड़ने की प्रक्रिया और उसमें अन्तर्निहित संयुक्त परिवार के विघटन की प्रक्रिया भी शुरू हो गई।

प्रेमचन्दोत्तर समाज में नारी का पत्नी रूप भिन्न–भिन्न स्वरूपों में उजागर हुआ है। कहीं वह पति के शोषण और उपेक्षा का शिकार है तो कहीं

वह पुरुष पर हावी नजर आती है। 'सागर,लहरें और मनुष्य' उपन्यास में वंशी का पति विट्ठल पूरी तरह वंशी के नियन्त्रण में है। 'नदी फिर बह चली' की परबतिया पति के शोषण का शिकार है। उसका पति उसे मॉडर्न बनाना चाहता है। और कहता है– "तुम तो यार–दोस्तों में मेरी नाक कटवा दोगी।"[4] 'उगते सूरज की किरन' में सरूली बौर के रूप में नारी का आदर्श पतिव्रता स्वरूप उजागर हुआ है।

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में नारी का प्रेमिका रूप भी सशक्त रूप में दृष्टव्य है। इन उपन्यासों में भारतीय समाज का आदर्श प्रेम और कुत्सित, अनैतिक प्रेम भी उजागर हुआ है। 'गली आगे मुड़ती है' उपन्यास में भी एकनिष्ठ व सच्चे प्रेम के दर्शन किरण व जयन्ती के प्रेम में होते है। ये दोनों ही मास्टर रामानंद से प्रेम करती है। 'रागदरबारी' उपन्यास की बेला में प्रेम का कुत्सित रूप ही झलकता है। 'कसप' उपन्यास भी कथा–प्रधान है, जिसके नायक–नायिका डी.डी. (देवीदत्त) और बेबी (मैत्रेयी) है। मैत्रेयी का प्रेम दुस्साहस, सामाजिकता, नैतिकता की सीमा पार करता उन्मादित आवेगात्मक है– "जो तू मेरा मरद है तो आ और भोग लगा ले मेरा।''[5]

वहीं परम्परागत मूल्यों एवं नैतिकता को तोड़ते नारी पात्र भी उपन्यासों में चित्रित हैं। 'मैला आंचल' के मेरीगंज गाँव की सामाजिक जिंदगी में नैतिकता की अवधारणा टूटती दिखायी देती हैं। कहीं मजबूरी वश, कहीं किन्हीं और कारण वश स्त्रियाँ परम्परागत मूल्यों का हनन कर रही हैं। नोखे की स्त्री का रामलगन सिंह के बेटे से, उचितदास की बेटी का कोयरी टोली के सरन महतो से, तहसीलदार हरगौरी सिंह का अपनी मौसेरी बहन से, बालदेवजी का लक्ष्मी कोठारिन से और नेता कालीचरण का चर्खा स्कूल की मास्टरनी से अवैध यौन–सम्बंध है।

इन उपन्यासों में नारी का समस्या–ग्रस्त जीवन भी दर्शाया गया है। बाल–विवाह, अनमेल विवाह, दहेज–प्रथा, विधवा–समस्या, परित्यक्ता, सौतेली–माँ, वेश्यावृत्ति आदि का सामाजिक परिप्रेक्ष्य में आकलन व निरूपण किया गया है। युगों के संघर्ष के बाद वैयक्तिक स्तर पर नारी ने जो पाया या खोया है उसका लेखा–जोखा भी स्वातन्त्रयोत्तर हिन्दी उपन्यासों में विशेषतः मिलता है।

पुरुष प्रधान मानसिकता के कारण विधवा को समाज में कटे हुए अंग के रूप में देखा जाता है। "विधवा का जीवन एक ठूंठ की तरह होता है जिस पर कभी हरियाली नहीं आने की, कभी फल–फूल नहीं लगने के, व्यर्थ बिल्कुल व्यर्थ–धरती का व्यर्थ भार। ''[6] इस प्रकार विधवा स्त्री परिवार में उपेक्षा और

प्रताड़ना तो सहती ही है। साथ ही चाहे–अनचाहे पुरुष की वासना का शिकार भी बनती है। सामाजिक प्रतिष्ठा के भय से कभी खामोश रह जाती है, क्षुब्ध होती है, कभी गर्भावस्था में आत्महत्या कर लेती है। 'गंगा मैया' उपन्यास में परिवर्तनशील विचारधारा का प्रभाव भी दृष्टिगोचर है। अपनी विधवा भाभी के साथ देवर स्वयं विवाह करने को प्रस्तुत होता है।

अनमेल विवाह के मूल में नारी को वस्तु समझे जाने की मानसिकता है। 'नई पौंध' में अनमेल विवाह की विभिषिकाओं पर दृष्टिपात किया गया है। पंडित खोंखाई झा की सात लड़कियाँ हैं जिन्हें उन्होंने अलग–अलग मूल्यों में बेचकर ठिकाने लगा दिया है। भारतीय समाज में दहेज प्रथा नारी के लिए अभिशाप बनी है। दहेज प्रथा जैसी वैवाहिक रूढ़ि के कारण ही बेमेल विवाह जैसी स्थिति सामने आती है।

'कथा सतीसर' में तुलसी अनमेल विवाह का शिकार है। भाई का विवाह, दहेज का अभाव जैसी समस्याओं के समाधान के रूप में तुलसी अपने अनमेल विवाह को स्वीकृत करती है। वह कहती है– मैं शादी न करूँगी तो भाई अनब्याहा रह जाएगा। .... मैं क्या खुश होऊँगी कात्या। वह बुड्ढा है पहली बीबी मर गई है, उससे दो बच्चे हैं, बड़ा वाला तो मेरी उम्र का होगा।"[7]

वेश्यावृत्ति किसी न किसी रूप में समाज में आदिकाल से चली आ रही है। यह एक गम्भीर सामाजिक समस्या है। वेश्यावृत्ति का जन्म अनमेल विवाह, अल्पायु में विवाह तथा निर्धनता एवं विधवा जीवन की विसंगतियों से उत्पन्न स्थितियों का परिणाम है। 'मैला आंचल' में लक्ष्मी कोठारिन इसका प्रमाण है। 'गली आगे मुड़ती है' उपन्यास की मनचंदा लीला और सुप्रिया आधुनिकता के अंधे मोह में भ्रमित हो जाती हैं, इनमें अल्पायु में ही यौन कुण्ठाएँ आ जाती हैं। 'उत्तरकथा' की कमला भी रखैल रूप में चित्रित हुई है।

स्वतंत्रता के पश्चात् बालविवाह एवं अनमेल विवाह की प्रवृत्ति का गाँवों में ह्रास हुआ है तथा विधवा विवाह का स्वरूप भी इनमें उभरा है। उनमें भी अभी ग्रामीण नारी का भाग्य बहुत कुछ उसके माता–पिता एवं परिवार के हाथ में है। शिक्षा का प्रसार अभी पूरी तरह नहीं हो पाया है। प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में नारी–स्वातन्त्र्य का उद्घोष करने वाले उपन्यासकारों ने नारी को आर्थिक धरातल पर खड़ा करके उसे पुरुष के समकक्ष स्थान प्रदान किया है। कामकाजी नारियों में शिक्षिका, चिकित्सक, लिपिक, प्रशासनिक अधिकारी, मॉडल आदि अनेकों नारी रूप साहित्य में उजागर हुए हैं, परन्तु इतना कुछ होते हुए भी नारी की स्थिति में विशेष अन्तर नहीं दिखता है। एक ओर जहाँ

स्वतन्त्रता का बिगुल बजता है, दूसरी ओर वह स्वयं भी वैयक्तिक और सामाजिक समस्याओं में घिरा पाती है। वह कार्यक्षेत्र में आकर भी पुरुष की इच्छा के विरुद्ध कोई पग आगे नहीं बढ़ा सकती, उसे पुरुष रूपी बैसाखी पकड़नी ही पड़ती है। नारी की घर–बाहर स्थिति सामंजस्यता एवं द्वन्द्वात्मकता को भी उपन्यासों में भली–भांति देखा जा सकता है।

अत्याधुनिक उपन्यासों में आत्मचेतना और आत्मगौरव से परिपूर्ण नारी पात्रों के दर्शन भी होते हैं, जो पुरुष की दासता तथा शोषण को किसी भी परिस्थिति में स्वीकार नहीं करतीं हैं। अपने अस्तित्व को सार्थकता प्रदान करती हुई ये नारियाँ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में संघर्ष करती है। जैसे 'चाक' उपन्यास की सारंग। 'कथा सतीसर' की मातायी, नसीम अनेकों कष्टों को सहने के बावजूद दृढ़–विश्वास, संघर्ष से अपने जीवन को व्यवस्थित करती है।

lUnHkZ %

1. पंकज विष्ट; 'उस चिड़िया का नाम' : राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 41, संस्करण–1989
2. शिवानी; 'श्मशान चंपा', हिन्द पाकेट बुक्स, नई दिल्ली, सं0 2002, पृ0 65,
3. नरेश मेहता; 'उत्तरकथा', लोकभारती प्रकाशन, सं01993, पृ0 101–105
4. हिमांशु जोशी; 'नदी फिर बह चली', पृ0 214–215
5. मनोहर श्याम जोशी; 'कसप', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं01982, पृ0 23
6. भैरव प्रसाद गुप्त; 'गंगा मैया', राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण–1952, पृ0 44
7. चन्द्रकांता; 'कथा सतीसर', राजकमल प्रकाशन, संस्करण–2001, पृ0 143

*****

nfyr lkfgR; esa LokuqHkwfr o lgkuqHkwfr

Mk0 lUnhi dqekj feJ*

दलित साहित्य अपने प्रारंभिक दौर से ही हिंदी के बुद्धिजीवियों के बीच व्यापक आलोचना का शिकार रहा है। सर्वप्रथम तो इसे अलग से दलित साहित्य के रूप में मान्यता देने पर ही विवाद रहा। जब हिंदी साहित्य के अंतर्गत ही दबे–कुचले लोगों की आवाज उठाई जाती रही है तो दलित को अलग से साहित्यिक आंदोलन क्यों माना जाए। इसके बाद प्रगतिशील ओलोचकों ने इसे प्रगतिशील साहित्य के अन्तर्गत मान लेने की हठधर्मिता दिखानी चाही जिसे सिरे से दलित साहित्यकारों द्वारा खारिज कर दिया गया। फिर इस बात पर विवाद हुआ कि दलित साहित्य किसे माना जाए? क्या केवल दलित लेखक ही दलित साहित्य लिख सकता है या फिर गैर–दलित रचनाकार द्वारा लिखे गए साहित्य को भी दलित साहित्य माना जाए? दलित साहित्य पर यह भी आरोप लगाया गया कि एक समय बाद दलित साहित्य मोनोटोनस यानी एकरस हो जाएगा। इस सारे प्रश्नों को हम 'स्वानुभूति' बनाम 'सहानुभूति' के अंतर्गत परखने का प्रयास करेंगे। इसकी विषय–वस्तु को लेकर भी सवाल उठते रहे हैं। इसलिए हम ऐसे तमाम सवालों का जवाब देंगे।[1]

सर्वप्रथम सवाल यह कि दलित साहित्य किसे माना जाये?

डॉ0 मैनेजर पांडेय कहते हैं– ''जहाँ तक दलित साहित्य की अवधारणा की बात है, तो दलित साहित्य को दो रूपों में देखा जा सकता है। एक तो दलितों के द्वारा दलितों के बारे में दलितों के लिए लिखा गया साहित्य और दूसरा दलितों के बारे में गैर–दलित लेखकों का साहित्य। मेरे विचार में करूणा और सहानुभूति के सहारे गैर–दलित लेखक भी दलितों के बारे में अच्छा साहित्य लिख सकते हैं। लेकिन सच्चा दलित साहित्य वही है, जो दलितों द्वारा अपने बारे में लिखा जाता है, क्योंकि, ऐसा साहित्य

*एसि0 प्रो0, मड़ियाहूँ पी0जी0 कालेज, मड़ियाहूँ, जौनपुर, उ0प्र0

सहानुभूति और करूणा से नहीं, बल्कि स्वानुभूति से उपजा होता है। ऐसी स्थिति में अगर आज के दलित लेखन पर ध्यान दें, तो ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियां, कंवल भारती की कविताएं तथा मोहनदास नैमिशराय की 'अपने–अपने पिंजरे' जैसी गद्य रचनाएं दलित साहित्य की संभावनापुर्ण शुरूआत का संकेत देती है।''[2]

रचनाकार के पास एक मानवीय दृष्टि होती है। उसी दृष्टि के सहारे वह समाज में उपेक्षित, दबे–कुचले लोगों को अपने लेखन का विषय–बनाता है।

कुछेक मानवीय चेतना के रचनाकारों को अगर छोड़ दें तो लगभग सभी रचनाकार–आलोचकों के लेखन–विवेचना का विषय दलित जीवन कहां बन पाया। मानवीय दृष्टि से भी वे उसे स्वंतत्र रूप से रचना में कहां स्थान दे पाये। इसलिए दलित साहित्य के प्रारंभ होने के पश्चात दलित साहित्य लिखने के दावे करना उचित नहीं है। हां, इतनी रियायत दी जा सकती है कि उनके लेखन को 'सहानुभूति' का लेखन मान लिया जाए। क्योंकि आज भी दलित उत्पीड़न, दलित जीवन और दारूण सामाजिक स्थितियों के अनुभव गैर–दलित रचनाकार कहां से लाएंगे? ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा जूठन में खाने के अनुभव और अपमानित जीवन की त्रासदी को क्या वे कभी महसूस कर सकते है।[3]

प्रेमचन्द्र ने मानवीय दृष्टि से, प्रगतिशील दृष्टि से दलित जीवन को आधार मानकर साहित्य लिखा, उन्हें अपने साहित्य में स्थान दिया। इस अर्थ में प्रेमचंद दलित साहित्य में सम्मानीय हो सकते हैं लेकिन वे दलित साहित्यकार नहीं बन सकते। उनके लेखन को सहानुभूति का लेखन ही कहा जाएगा। दलित लेखक शरण कुमार लिंबाले लिखते हैं–''गैर–दलित लेखक भी संवेदना और सहानुभूति से दलितों के लिए साहित्य लिखें तो कौन मना करता है उन्हें? पर यह उनका अनुभवजन्य साहित्य, प्रमाणिक दलित साहित्य नहीं माना जा सकता। इसे उनके महसूस करने की, उनके अहसासों की अभिव्यक्ति माना जा सकता है, सहानुभूति का साहित्य कहा जा सकता है। अनुभूति, स्वानुभूति से अधिक कलात्मक या प्रभावकारी हो सकती है लेकिन वह कितनी प्रभावकारी है, यह अहसास कराने वाले की ग्राह्यता पर निर्भर करेगा। यह सत्य है कि इस तरह का साहित्य वैसा प्रमाणिक नहीं होगा जैसा दलित द्वारा लिखा साहित्य होगा, भले कलात्मक अधिक हो।''[4]

गैर–दलित द्वारा लिखे साहित्य में यह हो सकता है कि कलात्मकता की कसौटी पर वह ऊंचा हो लेकिन दलित साहित्य की प्रामाणिकता की कसौटी पर वह निम्नतर ही होगा।

दलित समाज में अगर फुले और डॉ. अंबेडकर ने हुए होते और 'आरक्षण' जोकि अवसर देने की सुविधा मात्र है ने मिला होता तो दलित साहित्य क्या है, दलित सम्मान या मानवाधिकार जैसी बातें भी शायद न होतीं। जैसे समाज और राजनीति में दलितोत्थान का आंदोलन किसी गैर–दलित ने नहीं चलाया था और न ही वह चला सकता था।

सहानुभूति प्रेरित लेखन मानवीय, सुधारवादी और कुछ हद तक परिवर्तनकामी हो सकता है लेकिन क्या वह ब्राम्हणवादी वैचारिकी का विरोध करने वाला होगा? क्या वह अपने पूर्वजों द्वारा किए गये अत्याचार के विरोध में आत्मभर्त्सनापूर्ण लेखन कर पाएगा? है किसी गैर–दलित लेखक–चिंतक में इतना साहस? जरा करके दिखाए वह अपने पूर्वजों की बर्बरता की आलोचना। इसे भारतीय सामाजिक विवेचना के संदर्भ में देखा जाना चाहिए। दलित चिंतक गोपाल गुरु का कहना है कि–''भारत में मानवाधिकारों पर होने वाले किसी भी विमर्श की शुरूआत भारतीय सभ्यता की सांस्कृतिक आलोचना से होनी चाहिए।''[5]

शरण कुमार लिंबाले कहते हैं–''अछूत का अनुभव और जाति–व्यवस्था का कलंक अलग कर दिया जाए तो सर्वहारा का जीवन एक जैसा होता है।''[6]

यह स्वानुभूति और सहानुभूति का विभाजन किसी पूर्वाग्रह के आधार पर नहीं किया गया बल्कि समाज की अनिवार्यता को ध्यान में रखकर किया गया है। गैर–दलित रचनाकारों को भी इसे आज सही रूप में समझना चाहिए।

lanHkZ %

1. बड़व्या सूरज 2010; सत्ता, संस्कृति और दलित सौंदर्यशास्त्र, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा0) लिमिटेड, नई दिल्ली, पृ0 168
2. गुप्ता रमणिका, दलित हस्तक्षेप, ओम प्रकाश वाल्मीकि (सपां0) पृ0 19
3. गुप्ता रमणिका, वही पृ0 19
4. गोपाल गुरू, आधुनिकता के आइने में दलित, अजय कुमार दूबे, पृ0 89
5. वाल्मीकि, ओम प्रकाश; जूठन, पृ0 11

*****

tula[;k vkSj vkfFkd fodkl

MkO lquhy dqekj*

देश के आर्थिक विकास में वहाँ की जनसंख्या महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है बशर्ते यह वृद्धि अनुकूलतम होनी चाहिए। किसी देश के आर्थिक विकास का उस देश की जनसंख्या पर भी महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। इस तरह जनसंख्या तथा आर्थिक विकास के स्तर में प्रत्यक्ष एवं परस्पर घनिष्ट सम्बंध होता है, चाहे वह राष्ट्र विकसित अथवा अल्पविकसित कैसा भी क्यों न हो।[1]

प्रत्येक देश का उत्पादन स्तर, आर्थिक विकास की दर, राष्ट्रीय तथा प्रति व्यक्ति आय, देश में उत्पादक क्रियाओं का संचालन, रहन–सहन का स्तर आदि सभी दशायें उस देश की जनसंख्या के आकार, गठन एवं वितरण पर निर्भर करती है। यद्यपि आर्थिक विकास में प्राकृतिक संसाधनों तथा पूँजी की मात्रा का भी महत्वपूर्ण योगदान होता है, परन्तु ये आर्थिक विकास के निर्जीव साधन है। मानव ही वह शक्ति है जो इन संसाधनों का उपयोग करती है जिससे आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त होता है।

प्रो0 कार्नर के अनुसार, "सम्पन्न वातावरण के मध्य भी समुदाय एवं राश्ट्र निर्धन रहे है अथवा मिट्टी की उर्वरता तथा प्रचुर प्राकृतिक साधनों के होते हुए भी पतन की ओर अथवा गरीबी की ओर चले गये हैं। इसका मूल कारण यह है कि वहां की मानव तत्व निम्न कोटि का रहा है।" सवाल यह खड़ा होता है कि जनसंख्या की कितनी वृद्धि किसी देश की आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है क्योंकि कुछ दशाओं में जनसंख्या आर्थिक विकास के मार्ग में आने वाली प्रमुख बाधा भी है। जब जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ने लगती है तो अर्थव्यवस्था आर्थिक विकास के आदर्श अनुपात से दूर हट जाती है जिससे समस्यायें उत्पन्न होने लगती है।

प्राकृतिक साधनों का समुचित ढ़ंग से विदोहन करने के लिए यह आवश्यक होता है कि जनशक्ति का अन्य उत्पादन साधनों से एक निश्चित अनुपात बना रहे। यदि किसी देश की जनसंख्या कम है तो कार्यशील जनसंख्या

*प्रवक्ता, वाणिज्य विभाग, मड़ियाहूँ, पी0जी0 कालेज, मड़ियाहूँ, जौनपुर, उ0प्र0

भी कम होगी। अतः देश के अन्य उत्पादन के साधनों का प्रयोग समुचित रूप से न हो सकेगा जिससे प्रति व्यक्ति औसत उत्पादन और प्रति व्यक्ति आय कम होगी जब जनसंख्या बढ़ती है और उसके फलस्वरूप कार्यशील जनसंख्या भी बढ़ती है तो इससे श्रम विभाजन बढ़ता है तथा देश के साधनों का अच्छी तरह से प्रयोग होता है और प्रति व्यक्ति औसत आय बढ़ने लगती है और उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होने लगती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि जनसंख्या और आर्थिक विकास में सामंजस्यता होनी चाहिए।

भारत में जनसाधारण गरीब हैं इसलिए बचत का स्तर नीचा है। जिससे पूँजी निर्माण की गति बहुत ही धीमी है, जिसके परिणामस्वरूप आर्थिक विकास बहुत धीमी गति से हो रही है।[2] सन् 1891 में भारत की कुल जनसंख्या 23.6 करोड़ थी जो 1 मार्च सन् 2011 को 121.02 करोड़ हो गयी। इस छोटे से भू–भाग पर विश्व की इतनी अधिक जनसंख्या निवास करना देश के आर्थिक विकास के मार्ग में बहुत बड़ी बाधा है।[3] जनसंख्या में वृद्धि से उन वस्तुओं की मांग बढ़ती है जिनके उत्पादन में भूमि का योगदान अधिक होता है। अतः भूमि पर अन्य साधनों को अधिक मात्रा में लगाया जाता है। खाद्य पदार्थों, आवास वस्त्रों आदि की मांग जनसंख्या बढ़ने के साथ–साथ बढ़ती है जिसे पूरा करने के लिए इसका उत्पादन भी बढ़ाना होता है। इस प्रकार जब एक विकासशील देश अनिवार्य आवश्यकता की वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाने में उलझ जाता है तो आर्थिक विकास में बाधा उत्पन्न होने लगती है।[4]

कोल एवं हूवर के अनुसार "इस तरह, आर्थिक दृष्टि से पिछड़ी अर्थव्यवस्थाओं में जनसंख्या वृद्धि के फलस्वरूप विनियोग योग्य कोश घट जाती है। वह निवेश जो बढ़ती हुई जनसंख्या के भरण–पोषण या उसके वर्तमान स्तर को बनाये रखने के लिए आवश्यक है उसे जनांकिकीय विनियोग के नाम से जाना जाता है। विनियोग की यह मात्रा जनसंख्या वृद्धि की दर से निर्धारित होती है। यदि जनसंख्या वृद्धि की दर बहुत ऊँची होती है तो कुल विनियोग का एक बहुत बड़ा भाग, जनांकिकीय विनियोग में लग जाता है तथा आर्थिक विनियोग के लिए बहुत कम बच पाता है जिससे लोगों के रहन–सहन के स्तर में बहुत सुधार हो पाना सम्भव नहीं रहता है। अनुमानतः यदि जनसंख्या में प्रति वर्ष एक प्रतिशत की दर से वृद्धि हो रही है तो प्रति व्यक्ति आय के वर्तमान स्तर को बनाये रखने के लिए 2.5 प्रतिशत पूँजी विनियोग आवश्यक होता है।

जनसंख्या का आकार जितना बड़ा होता है, प्रति व्यक्ति पूँजी की उपलब्धता उतना ही कम हो जाती है। विकासशील देशों के सन्दर्भ में यह बात उचित प्रतीत होती है, क्योंकि ऐसे देशों में पूँजी की कमी रहती है तथा उसकी

पूर्ति प्रायः बेलोचदार होती है। कोल एवं हूवर के अनुसार, "यदि हम प्रभावपूर्ण माँग की समस्या की तरफ ध्यान न दें तब जनसंख्या की तीव्र वृद्धि श्रम शक्ति की औसत उत्पादकता को बढ़ाने तथा प्रति व्यक्ति औसत आय में वृद्धि करने के लिए उपलब्ध पूँजी की मात्रा को कम करने की प्रवृत्ति रखती है।"

विकासशील देशों की आयु संरचना में बच्चों की संख्या अधिक होती है। इसके परिणामस्वरूप आश्रित अनुपात ऊँचा होता है जो विकास के मार्ग में बाधक होता है। यदि किसी देश में बच्चों की संख्या अधिक है तो वहाँ की कार्यशील जनसंख्या कम होगी। इस प्रकार के जनसंख्या में बचतें कम तथा उपभोग अधिक होगा। इसके कारण पूँजी निर्माण कम होगा जिससे आर्थिक विकास की दर भी कम ही रहेगा।[5]

fu"d"kZ % देश के तीव्र आर्थिक विकास के लिए यह आवश्यक है कि जनसंख्या विस्फोट की स्थिति पर नियंत्रण लगाया जाय क्योंकि जनसंख्या का आकार, वृद्धि की दर तथा जनसंख्या की आयु संरचना तीनों ही यदि अनुकूलतम स्थिति पर नहीं है तो आर्थिक विकास में बाधक होते हैं। यदि जनसंख्या आवश्यकता से अधिक हो, तो भी अतिरिक्त जनसंख्या का संहार नहीं किया जा सकता। आवश्यकता इस बात की है कि एक ओर तो अधिक जनसंख्या का निर्वाह करने के लिए अपनी उत्पादन क्षमता बढ़ानी होगी और दूसरी ओर प्रजनन कम करना होगा ताकि जनसंख्या वृद्धि दर को कम किया जा सके, और विकास पर वांछित प्रभाव डाला जा सके।

lUnHkZ %

1. मिश्र डॉ0 जय प्रकाश, 2010; जनांकिकी, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, पृ0– 439, 443, 447, 448
2. सिन्हा डॉ0 वी0सी0, 2011–2012; यावसायिक पर्यावरण, एस0वी0पी0डी0 पब्लिशिंग हाउस, आगरा
3. प्रतियोगिता दर्पण, वार्षिक (अतिरिक्तांक), 2013; भारतीय अर्थव्यवस्था, उपकार प्रकाशन, पृ0–97
4. मिश्र, एस0के0 एवं पुरी, वी0के0, 2005; भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली पृ0–97
5. रूद्रदत्त के0पी0एम0 सुन्दरम, 2006; भारतीय अर्थव्यवस्था, एस0चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली, पृ0–31

*****

Hkkjr esa uo&tkxfr gsrq f'k{kk dh vifjgk;Zrk

Mk- fot; dqekj prqosZnh*

प्रस्तुत शोध पत्र द्वितीयक स्त्रोत पर आधारित है जिसमें अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप का प्रयोग किया गया है। यह शोध पत्र गाँधी जी के शिक्षा दर्शन के विविध परतों को रेखांकित करता है, जो आज भी प्रासंगिक है।

मानव–विकास में शिक्षा की भूमिका के सम्बन्ध में कहते है कि पौधे का विकास कृशि द्वारा तथा मानव का विकास शिक्षा द्वारा होता है। शिक्षा मानव के वैयक्तिक विकास के सदृश सामाजिक विकास की दशा एवं दिशा का निर्धारण करती है। इस प्रकार शिक्षा व्यक्ति के लिए ही नही अपितु समाज के लिए भी अनिवार्य आवश्यकता सिद्ध होती है।

भारत जैसे लोकतांत्रिक देश के लिए शिक्षा का महत्व अपेक्षाकृत अधिक ही होता है। उत्तम नागरिकों से उत्तम राष्ट्र का निर्माण सम्भव है। भारतीय संविधान में ऐसे समाज की कल्पना की गयी है जो सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, प्रतिष्ठा और अवसर की समानता पर आधारित है एवं राज्य को यह उत्तरदायित्व सौपा गया है कि वह सभी नागरिकों में व्यक्ति की गरिमा एवं राष्ट्र की एकता तथा अखण्डता सुनिश्चित करने वाली मातृत्व की भावना बढ़ाने का प्रयास करें। इन आकांक्षाओं की पूर्ति सार्वभौम शिक्षा से ही सम्भव है। इसलिए भारतीय संविधान में राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्तों के अनुच्छेद 45 में एक निश्चित अवधि के अन्दर सबके लिए शिक्षा की व्यवस्थ की प्रतिबद्धता स्वीकार की गई है[1] संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा (1948 ई0) में भी कहा गया है। शिक्षा मानव का जन्म सिद्ध अधिकार है।

आज शिक्षा की जो स्वरूप दिखलायी पड़ता है। वह किसी एक व्यक्ति के प्रयास या कालखण्ड का फल नही है। प्रारम्भिक काल से ही शिक्षा के विकास में अनेक महापुरुषों का उल्लेखनीय योगदान रहा है। जिन्होंने

*असिस्टेन्ट प्रोफेसर, बी.एड.विभाग, मड़ियाहूँ पी.जी. कालेज, मड़ियाहूँ, जौनपुर, उ0प्र0

अपने युगानुरूप शिक्षा का विधान कर तत्कालीन समाज को नवीन मार्ग दिखलाया। एक ओर मानव सभ्यता एवं संस्कृति प्रतिष्ठित करने वाले वशिष्ट, कौटिल्य, द्रोण, संदीपन आदि जैसे इतिहासकार प्रसिद्ध शिक्षक हुए तो दूसरी ओर राम, कृष्ण, बुद्धि, महावीर, अरविन्द, स्वामी विवेकानन्द, कबीर तथा नानक आदि जैसी विश्व–विभूतियाँ आयी जिन्होंने ने अपने ज्ञानलोक से अपने समकालीन समाज तथा आने वाली पीढ़ियों का मार्गदर्शन करने में सफल रहें है। शिक्षा को अग्रगति देने में सुकरात, प्लेटो, अरस्तू जैसे प्रत्यक्षवादी दार्शनिकों ने भी योगदान दिया। रूसो ने अपनी समकालीन शिक्षा को प्राकृतिक आधार प्रदान किया तो पेस्टालाजी ने शिक्षा को मनोवैज्ञानिक बनाया तथा जॉन डीवी ने शिक्षा को प्रयोजनवादी प्रारूप देने का प्रयास किया। शिक्षा से नवीन दिशा एवं गति प्रदान करने वालों की इसी श्रृखंला में भारत के राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी का नाम ससम्मान से लिया जाता है। जिन्होंने अपने शैक्षिक विचारों से अपने युग की शिक्षा को नवीन आयाम दिया है। गाँधी जी ने देश में नव–जागृति हेतु शिक्षा की अपरिहार्यता को समझा उनकी कृतियों, भाषणों, लेखों आदि से भारत की तत्कालीन साम्राज्यवादी शिक्षा के दोषों का प्रकट करने वाले अनेक ऐसे विचार आयें जिनसे भारतीय शिक्षा में क्रान्ति सी आने लगी। ब्रिटिश हित में उच्च वर्ण के मुट्ठी भर व्यक्तियों को अग्रेजी भाषा के माध्यम से दी जाने वाली मैकाले की कलकत्ते की राइटर्स बिल्डिंग के लिए बाबू बनाने वाली शिक्षा के विपरीत नयी तालीम (1937) का श्री गणेश हुआ जो मातृभाषा के माध्यम से हस्ताशिल्प द्वारा दी जाती थी तथा सर्वसुलभ एवं निःशुल्क थी।

गाँधी जी की शिक्षा, गाँधी जी कें जीवन–दर्शन से घनिष्ट रूप से सम्बन्धित हैं। गाँधी जी के अनुसार शिक्षा का अर्थ न साक्षरता है और न ज्ञान है। वे हमेशा इस बात पर बल देते थे कि हिन्दुस्तान के सभी नागरिक शिक्षित होने चाहिए। परन्तु वे साक्षरता को ज्ञान का माध्यम भी मानते थें। गाँधी जी का कथन था। साक्षरता न तो शिक्षा का अन्त है और न शिक्षा का प्रारम्भ। वह केवल एक साधन है, जिसके द्वारा पुरूष एवं स्त्री को शिक्षित किया जाता है।[2]

गाँधी जी का कहना था कि शिक्षा मनुष्य को संकीर्ण घेरे में बांधने के लिए नही बल्कि शिक्षा तो समस्त प्रकार की क्षमताओं का विकास करती है। गाँधी जी ने हिन्दुस्तानियों की शिक्षा को व्यवहारिक एवं वास्तविक रूप प्रदान करने के लिए कहा। सच्ची शिक्षा वही है जो बालक को आध्यत्मिक, मानसिक एवं शारीरिक शक्तियों का विकास करती है साक्षरता तो स्त्री एवं पुरुष को

शिक्षित करने का मात्र साधन है। उसका आदि एवं अंत नही है तथा साक्षरता अपने आप में शिक्षा नही है।[3] इन बातों से यह स्पष्ट होता है कि गाँधी जी शिक्षा की सार्थकता को शरीर, बुद्धि, भावना एवं आत्मा के पूर्ण विकास से भारत में नवजागरण स्थापित कराना चाहते थे।

गाँधी जी समाज मे व्याप्त स्त्री शिक्षा के प्रति उदासीनता से अत्यन्त दुखी थे। उनका सोचना था कि बिना बालिकाओं को शिक्षित किये देश में नव जागृति नही हो सकती । देश में अंधविश्वास, रूढ़िवादिता पर काबू नही पाया जा सकता। उन्होंने स्त्री शिक्षा की महत्ता को इस प्रकार परिभाषित किया है। ''यदि हम एक बालक को शिक्षित करते है। तो एक व्यक्ति को शिक्षित करते है और यदि एक बालिका को शिक्षित करते है तो एक परिवार को शिक्षित करते है।''[4] कहने का अभिप्राय यह है कि एक व्यक्ति अपने परिवार की अशिक्षा पर उदासीन हो सकता है। लेकिन एक स्त्री अपने परिवार की अशिक्षा को कभी बर्दाश्त नही कर सकती है।

lUnHkZ %

1. गुप्त रामबाबू : महान् पाश्चात् एवं भारतीय शिक्षा शास्त्री, पृ0 55
2. जायसवाल, सीतामल, 1967, शिक्षा विज्ञान कोश, प्रकाशन, नई दिल्ली
3. बघेल, सच एस, 2007, शिक्षा तथा भारतीय समाज, राजस्थान प्रकाशन, जयपुर
4. पाण्डेय राम सकल, 2012, भारत में शिक्षा व्यवस्था का विकास, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा

*****

d'ehjh 'kSoer dk fodkl ,oa bfrgkl

MkW c`ts'k dqekj ;kno*

कश्मीर में जिस शैवमत का विकास हुआ वह अन्य शैव सिद्धान्तों से कहीं अधिक उपयुक्त और मानवीय था तथा वह त्रिक् दर्शन के नाम से जाना गया। इस कश्मीरी शैव दर्शन में पाशुपत, कापालिक और कालामुख के निन्दनीय आचारों और अवांछनीय व्यवहारों का अभाव है। माँस, मदिरा, मैथुन, खोपड़ी में आहार ग्रहण करना, श्मशान की राख अपने शरीर पर मलना तथा मनुष्य और पशु की बलि चढ़ाना जैसे व्यभिचारों की इसमें भर्त्सना की गई है। इस दर्शन में ज्ञान और ध्यान को परमब्रह्मा की प्राप्ति का प्रधान आधार माना गया है। इसकी तीन शाखायें हैं– आगमशास्त्र, स्पंदनशास्त्र और प्रत्यभिज्ञाशास्त्र

कश्मीर मत में दस शैवागम, 18 रौद्रागम और 64 भैरवागम अर्थात 93 आगमों की मान्यता है। इन आगमों में सिद्धा, नामक और मालिनी का विशेष आदर है। इस मत के मूल प्रवर्तक वसुगुप्त हैं जो लगभग 825 ई0 में थे। उन्होंने शिवसूत्र और स्पन्दकारिका नामक ग्रंथों की रचना की है।

इसी प्रकार सोमानंद ने प्रत्यभिज्ञा को इतने प्रभावशाली ढंग से मोक्षोपाय के रूप में वर्णित किया कि इस मत को प्रत्यभिज्ञादर्शन कहा जाने लगा। सर्वदर्शन संग्रह के रचयिता माधवाचार्य ने इस दर्शन को प्रत्यभिज्ञादर्शन कहा।

स्पदंशास्त्र के अनुसार मोक्ष के उपाय केवल तीन हैं– शांभव, शाक्त और आणव और प्रत्येक उपाय में योगाभ्यास की आवश्यकता है। किन्तु प्रत्यभिज्ञाशास्त्र में एक चौथा उपाय भी माना गया है जिसे प्रत्यभिज्ञा कहा जाता है। प्रत्यभिज्ञा का अर्थ अपनी आत्मा को पहचानना है। यह प्रतिभ्या ज्ञान का मार्ग हैं इसमें योगाभ्यास की आवश्यकता नहीं है। प्रत्यभिज्ञादर्शन का विशेष प्रभाव कबीर के पारख मत पर देखा जा सकता है।

*प्रवक्ता, प्राचीन इतिहास, रामलखन महाविद्यालय, सराय वृसिंह उर्फ सरायं बाहर, सेवइत, सोरांव, इलाहाबाद

जिस समय दक्षिण में अनेक संत और विद्वान शैवमत को प्रधानता दिलाने और उसके दार्शनिक पक्ष का विकास करने में लगे हुए थे, उसी समय भारत का एक और भाग भी शैव विद्वानों का केन्द्र बन गया। यह था कश्मीर। यह कहना कठिन है कि ठीक किस समय और किस रूप में कश्मीर में शैवधर्म का प्रचार हुआ। परन्तु अति प्राचीन काल से ही कश्मीर उत्तर भारत के सांस्कृतिक क्षेत्र के अन्तर्गत रहा है और उत्तर भारत में जो–जो धार्मिक आंदोलन हुए, उन सबका प्रभाव अनिवार्य रूप से कश्मीर पर पड़ा। इसके अतिरिक्त 'वसुगुप्त' के समय तक, जो आठवीं शती में हुए थे, कश्मीर में शैव आगमों की बड़ी प्रतिष्ठा थी और उन्हें अति प्राचीन माना जाता था। अतः कश्मीर में उनका प्रचार बहुत पहले से रहा होगा। प्रारम्भ में कश्मीर में भी इन आगमों की व्याख्या उसी प्रकार की जाती थी जिस प्रकार अन्यत्र। 'वसुगुप्त' ने स्पष्ट रूप से कहा है कि इनकी व्याख्या इसी प्रकार की जाती थी। फिर हमें छठी या सातवीं शती का एक प्राचीन ग्रंथ भी मिलता है, जिसका नाम 'विरूपाक्ष पंचाशिका' है और जिसमें शैवमत के दार्शनिक पक्ष का सारांशतः विवरण उसी प्रकार किया गया है जिस प्रकार आगम ग्रंथों में। परन्तु लगभग इसी समय कश्मीर में एक नई विचारधरा का प्रादुर्भाव हुआ जिसके प्रवर्तक आगमिक सिद्धान्तों की अधिक शुद्ध अद्वैतवादी ढंग पर व्याख्या करना चाहते थे। इस विचारधारा का जन्म कैसे और किस प्रभाव से हुआ यह नहीं कहा जा सकता। सम्भव है कि कश्मीर में पहले ही से कोई विशुद्धाद्वैतवादी सम्प्रदाय रहा हो और उसके कुछ योग्य विद्वान अनुयायियों ने शैव आगमों की अपने ढंग पर व्याख्या करने का इसी प्रकार प्रयास किया हो, जिस प्रकार शंकर ने समस्त उपनिषदों में विशुद्ध अद्वैत ढूंढने का प्रयास किया था। इसमें से एक विद्वान तो स्वयं 'वसुगुप्त ही थे।

इन सूत्रों में उन्होंने शैवमत के दार्शनिकों सिद्धान्तों की विशुद्ध अद्वैतवाद के अनुसार व्याख्या की और इस प्रकार अद्वैतवादी शैव सिद्धान्त की नींव डाली जो बाद में कश्मीरी शैवमत कहलाया। यह शिवसूत्र उन सूत्रों से सर्वथा भिन्न है जो आज तक शिवसूत्रों के नामसे प्रसिद्ध है, और जिनका रचयिता अज्ञात है। 'वसुगुप्त' के सिद्धान्तों का और अधिक प्रचार उनके शिष्य 'कल्लट' ने अपनी टीकाओं द्वारा किया, जिनमं एक 'स्पन्दसूत्र' अथवा स्पन्दकारिका' के नाम से प्रसिद्ध है।

वसुगुप्त और 'कल्लट' दोनों ने ही इस नये दर्शन की रूपरेखा मात्र को निर्धारित किया। उन्होंने तर्कों द्वारा इसकी विस्तृत विवेचना नहीं की। यह

काम सोमानन्द ने उठाया जो 'कल्लट' के समाकालीन थे। हो सकता है, वह 'वसुगुप्त' का शिष्य भी रहे हों। 'सोमानंद' ने प्रख्यात 'शिवदृष्टि' नामक ग्रंथ की रचना की, जिसमें उन्होंने वसुगुप्त और 'कल्लट' द्वारा प्रस्तुत सिद्धान्तों की पूर्ण विवेचना की और उनको एक निश्चित दर्शन का रूप दिया। 'सोमानंद' के बाद इस काम को उनके शिष्य 'उत्पल' ने जारी रखा। 'उत्पल' के शिष्य 'अभिनव गुप्त' थे। उन्होंने 'परमार्थसार' नामक ग्रंथ की रचना की और तत्पश्चात 'उत्पल' के 'प्रत्यभिज्ञासूत्र' और अभिनवगुप्त' का 'परमार्थसार' कश्मीरी शैव सिद्धान्त के प्रमाणिक ग्रंथ माने जाने लगे।

इन्हीं दो ग्रंथों में कश्मीर में शैव सिद्धान्त का पूर्ण विकास होता है। अभिनवगुप्त के शिष्य 'क्षेमराज' ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'शिवसूत्र विमर्शिनी' में वसुगुप्त के शिवसूत्रों की व्याख्या की। क्षेमराज ने अन्य भी अनेक प्रमाणिक ग्रंथ लिखे, जिनमें उन्हेांने इस प्रत्यभिज्ञादर्शन की विस्तृत व्याख्या की। इनमें से 'प्रत्यभिज्ञाह्रदय; स्पन्दसन्दोह' और 'स्पन्दनिर्णय प्रमुख है।

क्षेमराज के बाद प्रत्यभिज्ञादर्शन का विकास प्रधानतः उपर्युक्त ग्रंथों पर टीकाओं द्वारा ही हुआ। इन टीकाकारों में सबसे बड़े 'योगाराज' हुए हैं। यह भी अभिनवगुप्त' के ही शिष्य थे।

lUnHkZ %

1. शिवसूत्र–वसुगुप्त
2. वसुगुप्त–स्पंदकारिका
3. माधवाचार्य–सर्वदर्शन संग्रह
4. वसुगुप्त–स्पंदकारिका
5. वही–स्पंदकारिका
6. श्री चट्टोपाध्याय–कश्मीरी शैवमत
7. कल्लक–स्पंदसूत्र
8. सोमानंद–शिवदृष्टि
9. माधवाचार्य–सर्वदर्शन संग्रह
10. अभिनवगुप्त–परमार्थसार
11. क्षेमराज–शिवसूत्र विमर्शिनी

*****

egkRek xk/kh vkj MkO Hkhe jko vEcsMdj d vLi';rk lc/kh fopkj% ,d v/;;u

lqcks/k fxjh*

lkjka'k%

प्रस्तुत शोध पत्र गोलभेज सम्मेलन के बीच की अवधि में महात्मा गाँधी और डॉ0 भीम राव अम्बेडकर कें अस्पृश्यता संबन्धी विचार को रेखांकित किया गया है।

गाँधी जी ने कहा भारत की स्वतंत्रता की कीमत पर भी मै अस्पृश्यों के हितों की अवहेलना नहीं कर सकता। मैं मात्र कांग्रेस की तरफ से नहीं कहता बल्कि अपनी ओर से भी कहता हूँ कि यदि अस्पृश्यों का कोई जनमत कराया जाए तो मै सबसे शीर्ष स्थान पर रहूँगा। अस्पृश्यता के बने रहने की अपेक्षा उचित है कि हिन्दू धर्म मर जाए। इसलिए डॉ0 अम्बेडकर के प्रति तथा उनकी क्षमता के प्रति सम्पूर्ण श्रद्धा के साथ मेरा निवेदन है कि अस्पृश्यों के स्थान की उनकी इच्छा पूरी हो। वे बड़ी गलतफहमी में जिए हैं और उन्होंने श्रम किया है, पर अपने बयान को उन्होंने विकृत कर दिया है। इस कथन से मुझे दर्द होता है। सच बात यह कि अस्पृश्यता के दुःख मेरे अपने जीवन के दुख हैं और ऐसा मैं न कहूँ तो मैं अपने जीवन के प्रति असत्य ही रहूँगा। सारी दुनियाँ के साम्राज्य के बदले में भी मै अस्पृश्यों के हितों को नहीं खो सकता। मैं यह बात सम्पूर्ण जिम्मेदारी के साथ कह रहा हूँ कि डॉ0 अम्बेडकर के लिए यह दावा करना उचित नहीं है कि वे सारे भारत के दलितों का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। यह हिन्दू धर्म में विभाजन पैदा कर देगा, मै इसको देख नहीं पाऊंगा और न ही ऐसा कोई कृत्य मुझे कोई संतोष देगा। मुझे कोई एतराज नहीं होगा यदि कोई मुस्लिम या ईसाई धर्म में शामिल हो जाए पर ग्राम स्तर तक हिन्दू धर्म दो भागों में विभाजित हो जाए–यह स्वीकार्य नहीं है। जो लोग अस्पृश्यों को राजनीतिक अधिकार देने की बात कर रहे हैं वे भारत को नहीं

*सहायक अध्यापक, किसान इण्टर कालेज, मुहिउद्दीनपुर, मेरठ, उ0प्र0

जानते और न ही भारत किस प्रकार रचा गया है इसे जानते है। मैं जोरदार तरीके से यह कहना चाहता हूँ कि अगर मुझे इस बात का प्रतिरोध करना पड़ा तो मैं जिन्दगीभर इसका प्रतिरोध करूंगा।[1]

इस सबके बारे में अम्बेडकर का क्या सोचना था? अम्बेडकर को यह वक्तव्य असहनीय यहाँ तक कि मूर्खतापूर्ण अहंकार लगा होगा। कांग्रेस में गाँधी के पीछे गंभीर समाज सुधारक नहीं थे (अम्बेडकर इस बारे में आश्वस्त थे), बल्कि ब्राह्मण तथा अन्य ऊँची जाति के लोग थे जो भारत को सामाजिक, आर्थिक स्थितियों पर अपना एकाधिकार बनाए रखना चाहते थे। किसी भी स्वराज में अपने हितों को बनाए रखने की उनकी आकांक्षा थी। क्या अलग निर्वाचन दलितों के लिए इतना नुकसानदायक था? दलितों में अभी भी इस मुद्दे पर पर बहस जारी है।[2]

ग्रामों में राजनीतिक विभाजन की चर्चा करते समय गाँधी यह भूल गए कि ऐसा विभाजन पहले से ही मौजूद था। हिंसा की चेतावनी देते समय भी गाँधीजी यह भूल गए कि गाँवों मे दलितों के विरूद्ध हिंसा पहले से ही विद्यमान थी। यह दावा कि वे अस्पृश्यों के नाम पर बोल रहे हैं या अस्पृश्यों की समस्याओं पर बोल रहे हैं अथवा अस्पृश्यों के मूलभूत हितों पर उनकी चिंता है, वे दलितों के परिप्रेक्ष्य से नही बोल रहे थे, न वे एक राष्ट्र नेता की हैसियत से बोल रहे थे। दूसरे गोलमेज सम्मेलन में वे एक हिन्दू की तरह बोल रहे थे, दूसरे गोलमेज सम्मेलन में गाँधी का रूख यही था।

नैतिकवाद के पीछे एक राजनैतिक चुनौती विद्यमान थी। गाँधी अम्बेडकर के प्रतिनिधि स्वरूप को चुनौती दे रहे थे और कह रहे थे कि वे और उनकी कांग्रेस दलितो के प्रतिनिधि थे। लंदन में गाँधी के साथ झड़प के बाद एक राजनीतिक संघर्ष होना तय था। सारे कांग्रेस अभिजन जिसमें कांग्रेस समर्थक अखबार भी थे, अस्पृश्यों को पटाने के लिए बैठकें करने लगे। उन्होंने दलितों के प्रवक्ता भी तैयार किए। जिनका प्रमुख उद्देश्य अम्बेडकर का विरोध करना था। अस्पृश्य अम्बेडकर की निंदा कर रहे हैं, ऐसा प्रचार वे कर रहे थे। संयुक्त निर्वाचन के समर्थन में एक लहर चल रही है।[3]

अम्बेडकर तथा उनके जुझारू दलितों ने इसका जवाब प्रदर्शनों से दिया (प्रदर्शनों में नव स्थापित समता सैनिक दल ने भरपूर योगदान दिया)। उन्होंने अन्य दलित संगठनों से भी सहयोग मांगा।[4]

जहाँ तक महाराष्ट्र का प्रश्न है, अम्बेडकर अपनी लामबंदी की लड़ाई जीत गए। हम इसकी तुलना 1922 में नागपुर में गवई द्वारा आयोजित प्रदर्शन से कर सकते हैं।[5]

दूसरी ओर दूसरे सम्मेलन से लौटने पर काले झण्डे लिए 8,000 से अधिक लोगों ने गाँधी के खिलाफ प्रदर्शन किया।[6]

बहुमत के जाति हिन्दुओं की अपेक्षा गरीब शोषित वर्ग के लोगों का यह प्रदर्शन अधिक प्रभावशाली था। लेकिन गैर–महार दलितों में कांग्रेस कुछ पैठ जमा पाई। अम्बेडकर ने तत्कालीन संगठनों का समर्थन जीत लिया था। लामबन्दी के अन्य स्थानों पर निम्न स्तर का अर्थ था कि न तो गाँधी और न अम्बेडकर को बड़ा जनसमर्थन प्राप्त था।

जनवरी 1933 में टाइम्स ऑफ इंडिया में प्रकाशित एक अनाम पत्र में यद्यपि कथन बढ़ा–चढ़ा कर लिखा गया था, पर उसमें कुछ सार जरूर था।

हिन्दू राजनीतिज्ञ अब दलितों को गले लगाने लगे हैं। अंशतः इसलिए क्योंकि देश की राजनीति में उनका महत्त्वपूर्ण प्रवेश हो चुका है इसके अलावा उनको स्वयं के भविष्य की चिन्ता है। यदि डॉ0 अम्बेडकर चाहते हैं तो उन्हें इन लोगों को न केवल हिन्दुओं में बल्कि उन्हें ब्राह्मणों में शामिल करना पड़ेगा। आज की स्थिाति यही है।[7]

जब गाँधी ने अस्पृश्यता के विरूद्ध संघ की स्थापना करने का प्रसास किया (यह संगठन हरिजन सेवक संघ था)। अम्बेडकर ने यहाँ हस्तक्षेप करने का प्रसास किया। दो मुद्दे थे। पहला–क्या संघ का नियन्त्रण हिन्दू जातियों के हाथों में रहेगा या दलितों को उसके नियन्त्रण में कुछ भागीदारी मिलेगी ? दूसरा–क्या संघ का इरादा मात्र अस्पृश्यता को समाप्त करना है या चातुर्वर्ण व्यवस्था को समाप्त करना है जो अस्पृश्यता का मूल है। गाँधी का दृढ़ विश्वास था कि हिन्दू जातियाँ ही इस पर नियन्त्रण करेंगी। क्योंकि अस्पृश्यता हिन्दू समाज का दोष है अतः हिन्दुओं को इसे निकाल फेंकना पड़ेगा। इसी तर्क के आधार पर संघ का नियन्त्रण हिन्दू जातियों के हाथ ही रहना चाहिए। उनका यह भी कहना था कि वे चातुर्वण व्यवस्था के विरूद्ध नहीं है।[8]

इस आधार पर गाँधी और अम्बेडकर का साथ–साथ काम करना असम्भव था। 1930–32 की घटनाएं एक सुर की थीं। इस घटनाओं ने यह दिखा दिया था कि किस प्रकार दलित आन्दोलन ने अपने आपको मजबूत किया है, अम्बेडकर को स्थापित किया है तथा अस्पृश्यता के मुद्दे को राजनीति की मुख्य धारा में ला दिया है। हिन्दू धर्म के प्रति अम्बेडकर का यह अंततः तिरस्कार था और दलित जुझारू शक्तियों के नेतृत्व को करने के लिए आश्वस्त हो गए थें कि यदि हिन्दू धर्म को सुधार भी दिया जाए तो भी दलितों को स्वायत्तता की प्राप्ति नहीं हो सकती। इन घटनाओं ने यह भी स्पष्ट कर

दिया कि–(अ) गाँधी जो हिन्दूवाद के सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि थे चातुर्वण व्यवस्था से कभी भी नहीं हटेंगे और उसे संरक्षण ही देते रहेंगे। (ब) उपवास और समझौते के इर्द–गिर्द नैतिकता का वातावरण होते हुए भी यह शक्ति और लेन–देन (शक्ति को प्राप्त करने के लिए) का खेल था। (स) हिन्दू जातियों का एक बड़ा वर्ग दलितों को इस सीमित अधिकार देने के विरूद्ध था जैसा कि पूना समझौते के विरूद्ध उठे तूफान और प्रदर्शनों से स्पष्ट हैं। (द) अन्य दलितो नेतृत्व का ऊँची जातियों द्वारा प्रयोग किया जा सकता था, जब तक कि वे अपनी पहचान हिन्दुओं के साथ बनाए रखते।[9]

lanHkZ %

1. सोर्सेज, खण्ड–प्रथम, पृ0 661–63
2. उदाहरण के लिए देखे रावसाहेब कास्बे, अम्बेडकर एण्ड मार्क्स (पूना, सुगवा प्रकाशन, 1985) तथा काँशी राम, द चमचा एजः एन एरा ऑफ द स्टूजेज(नई दिल्ली, लेखक,1952)
3. सोर्सेज, खण्ड I, पृ0 53–83
4. करीब–करीब सभी समाचार पत्रों में प्रकाशित रिपोर्ट विशेष रूप से राष्ट्रवादी समाचार पत्र बॉम्बे क्रॉनिकल में अम्बेडकर के प्रति विरोध के बारे में छपा था। देखें सोर्सेज, खण्ड–प्रथम, पृ0 74–75
5. 7 मई तथा 23 मई 1932 के बॉम्बे क्रॉनिकल में प्रकाशित रिपोर्ट, सोर्सेज, खण्ड प्रथम, पृ0 78–79 पर उद्धृत
6. जिलट, 'लर्निंग द यूज ऑफ पोलिटिकल मीन्सः द महार्स ऑफ महाराष्ट्र' लेख प्रकाशित–रजनी कोठारी (सम्पादक) कास्ट इन मॉडर्न इण्डियन पोलिटिक्स (पूना, ओरियंट लांगमैन्स, 1970) पृ0 48
7. टाइम्स ऑफ इण्डिया, 2 जनवरी, 1920, उद्धृत–सोर्सेज, खण्ड प्रथम, पृ0 104
8. अम्बेडकर के गवई की पत्र के सदर्भ में देखें सोर्सेज, खण्ड प्रथम, पृ0 72–83
9. ओमवेट, गेल, 2009, दलित और प्रजातान्त्रिक क्रान्ति अनुवादकः नरेश भार्गव, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, पृ0 168

*****

ykdrkaf=d 'kklu O;oLFkk izkphu Hkkjr ds fo'ks"k lUnHkZ esa

t;o/kZu*

प्राचीनकाल से ही भारतीय ग्रामों ने स्थानीय स्वशासन और स्वायत्तता का उपभोग किया। यहाँ एक के बाद एक राजवंशों का उत्थान व पतन हुआ, शक, यवन, हूण, कुषाण, मुगल, मंगोलों के बर्बर विदेशी आक्रमण हुये, पर सामाजिक संगठन के रूप में ग्राम अटूट बना रहा, ग्राम पंचायतों का पारम्परिक स्वरूप अपरिवर्तित ही रहा और भी अद्भुत और विचित्र बात थी कि महान और निरंकुश राजवंशों की छत्रछाया में भारत में पंचायती संस्था और भी फली–फूली। ''हड़प्पा सभ्यता के अवशेषों में प्राप्त नगरों, गृहों, सार्वजनिक भवनों स्नानागारों तथा योजनाबद्ध मार्गों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि राजनैतिक संगठन का निर्धारण विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्तों पर किया गया था। नियोजन तथा विधि पालन की प्रवृत्ति जड़ें जमा चुकी थी, जिसके आधार पर महापालिका या नगर विकास प्रबन्ध एवं प्रबन्धकारिणी जैसी संस्था वर्तमान रही होगी। इस संस्था को नियम पालन करवाने की क्षमता प्राप्त थी। कई नागरीय समितियां अथवा संस्थायें किसी केन्द्रीय शक्ति द्वारा संचालित होती रही होगी, तथा केन्द्रीय सत्ता द्वारा नियुक्त अधिकारीगण समय–समय पर स्वायत्त शासन के कार्यों का निरीक्षण करते होंगे।[1] मोहनजोदड़ो नगर की सुरक्षा के लिये नगर को छोटी–छोटी दीवारों द्वारा कई भागों में विभाजित किया गया जिनकी चौकसी नगर रक्षक करते थे। सार्वजनिक मार्गों के मोड़ों पर कतिपय विशिष्ट भवनों की प्राप्ति मैके महोदय के इस विश्वास को पुष्ट करती है कि इनमें सुरक्षा कर्मचारी तैनात थे। यदि स्वायत्त शासन की व्यवस्था न होती तो मार्गों की रक्षा, प्रकाश के लिये लैम्प पोस्टों का प्रबन्ध, सफाई व्यवस्था, जल निकास का प्रबन्ध कैसे हो सकता था।

*शोध छात्र, सी0सी0एस0 विश्वविद्यालय, मेरठ, उ0प्र0

वैदिक कालीन ग्राम सभायें, सभा और समिति के रूप में ही उद्भूत हुई। सभा का सम्बन्ध ग्राम से था, सभा ग्राम संस्था थी, इस दृष्टि से वैदिक राज्य में उतनी ही सभायें थीं, जितने उस राज्य में ग्राम होते थे।[2] अथर्ववेद के अनुसार सभा का सदस्य चाहे जिस वर्ण रंग आकृति आदि का पुरूष हो, उसे सभा में बैठने का समान अधिकार प्राप्त थे, प्रत्येक सदस्य को अपना मत व विचार प्रकाशन की स्वतंत्रता थी। सभा में सर्वसम्मति से निर्णय होता था, सर्वसम्मति न होने पर बहुमत का आश्रय लिया जाता था।[3]

समिति को सभा की यमज भगिनी और प्रजापति को दुहिता कहा गया है। वैदिक राज्य में समिति का अभाव अथवा उसका निष्क्रिय हो जाना अनिवार्य समझा जाता था।'' समिति हीन राज्य मृतवत समझा जाता था, वैदिक आर्यों द्वारा सार्वजनिक जीवन सम्बन्धी समस्याओं को परस्पर मिल–जुल कर एवं विचारों के परस्पर आदान–प्रदान द्वारा सुलझाने और सम्पूर्ण राज्य की जनता के कल्याण का चिन्तन कर तदनुसार साधनों के जुटाने में समिति का महान सहयोग रहता था। इस दृष्टि से समिति वैदिक आर्यों की उपयोगी संस्था थी, उसके बिना उनके राष्ट्रीय जीवन का सम्यक विकास असम्भव था।[4] वेदों में ग्रामों के अधिकारी को ग्रामिणी कहा गया है। जातक कथाओं और स्मृतियों में भी उसका उल्लेख मिलता है।

महान मौर्य सम्राटों के प्रशासन की भी मुख्य विशेषता स्थानीय स्वशासन था। मौर्य साम्राज्य में राजदूत मेगस्थनीज द्वारा वर्णित नगरीय शासन की समितियां अपने विशिष्ट दायित्वों के अलावा सामूहिक रूप से नगर की सुव्यवस्था स्वच्छता, जल प्रबंध, प्रकाश व्यवस्था, मार्गों के निर्माण व सुरक्षा, सार्वजनिक भवनों की देखरेख तथा जनहितकारी कार्यों के लिये उत्तरदायी थी।

गुप्तकाल में भी नगर व ग्राम्य स्वशासन के श्रेष्ठ उदाहरण मिलते हैं। नगर परिषद का प्रमुख अधिकारी पुरपाल होता था। ग्राम में ''ग्रामपति'' या ''महत्तर'' था, उसकी सहायता के लिये पंचायतें होती थीं। पंचायतें अपने अधिकार क्षेत्र में पूर्णतः स्वतंत्र थीं। ग्रामपति की सहायता के लिये दूत, गड़रिये, लेखक, दाण्डिक, आदि थे। ग्रामसीमा का निर्धारण करों की वसूली, कृषि सिंचाई, उद्यान, मंदिर, न्याय आदि की व्यवस्था करने में ग्राम प्रशासन को पर्याप्त अधिकार प्राप्त थे। ग्राम प्रशासन के कार्यों का निरीक्षण राजकीय पदाधिकारी करते थे। ग्रामों के बीच सीमा विवाद के झगड़े का निपटारा ग्राम पंचायतों द्वारा मिलकर किया जाता था।[5]

पंचायती व्यवस्था का सर्वथा परिष्कृत व स्वर्णिक स्वरूप हमें दक्षिण भारत में विशेषतया चोल शासन में दिखाई देता है। स्थानीय स्वशासन की

उच्चतर प्रणाली का विकास करके उसको सफलतापूर्वक व्यवहार में लाना चोलों की असाधारण देन है। चोल अभिलेखों में स्थानीय स्वशासन की इस मौलिक व्यवस्था का विस्तृत वर्णन मिलता है। कोट्टम (गांव) से लेकर मण्डल (प्रान्त) तक स्वशासन की संस्थायें थीं जो प्रशासन कार्य देखती थीं। वलनाड़ (बड़े प्रदेश) की सभा को ''नागस्तार'' कहते, नाडु (जिले) में कार्यरत संस्था ''नाट्टर'' कहलाती थीं। कोट्टम गांव की सभा होती थी। चोल शासन में ग्राम दो तरह के थे। सामान्य ग्राम जो ''उर'' कहलाते उनकी संस्था को ''उरार'' कहते हैं। कुछ गांव विद्वानों को दान में दिये जाते, उनकी सभा चतुवैदिमंगलम कही जाती थी। इनकी संस्था को सभा कहते थे।[6] यह अत्यन्त आश्चर्य व गौरव की बात है कि उस काल में इन ग्राम सभाओं को स्वतंत्रता व व्यापक अधिकारों के रूप में काफी स्वायत्तता प्राप्त थी। ये ग्रामसभायें ग्राम की भूमि की स्वामिनी थी। उत्तरमरूर के मंदिर की दीवार पर उत्कीर्ण दसवीं सदी के एक लेख में इन ग्रामसभाओं की कार्यविधि के बारे में विस्तृत जानकारी मिलती है।[7] ग्रामसभायें अपना काम अनेक समितियों के माध्यम से करतीं थी, जिन्हें वरियम कहा जाता था। समिति में कभी–कभी स्त्रियों को भी लिया जाता था। प्रत्येक समिति में सभा द्वारा निर्वाचित सदस्य होते थे। ग्रामसभा के निर्वाचन के लिये गांव को तीस भागों में बांटा जाता था।

इन निर्वाचित सदस्यों से ही गांव की स्थायी समिति, न्याय समिति, कृषि समिति, उप वन समिति व अन्य समितियां बनाई जातीं थीं। लाटरी सिस्टम से चुने गये ये प्रतिनिधि 360 दिन तक के लिये चुने जायेंगे। ग्रामसभा का महत्व उसके कार्यों से ज्ञात होता है।

अपने महत्वपूर्ण दायित्वों के साथ, इन ग्रामसभाओं को पूर्ण रूप से स्वायत्त शासन के अधिकार प्राप्त थे। राज्य दो ग्रामसभाओं के आपसी विवाद या अनियमितता की सूचना पर ही हस्तक्षेप करता था। ग्राम परिषदों और राजा के बीच श्रेष्ठ सम्बन्धों के अनेक उल्लेख मिलते हैं।

चोलों ने सुयोग्य नौकरशाही और सक्रिय स्थानीय संस्थायें, जो जनता में नागरिकता की सजीव भावना का संचार करती थी, के बीच प्रशासनिक दक्षता और शुचिता के क्षेत्र में एक उच्च मानदण्ड स्थापित किया था, जो सम्भवतया हिन्दू राज्य द्वारा प्राप्त किया गया सर्वोच्च स्तर था।[8] चोलों द्वारा स्थानीय स्वशासन के विषयों में इस उच्चतर प्रणाली का विकास सम्पूर्ण भारत के लिये गौरव की बात थी।

भारतीय ग्रामों के वैदिक काल से ही स्वायत्तता का उपभोग किया है। महान मौर्य सम्राटों ने भी जिन्होंने शासन की छोटी से छोटी बातों में हस्तक्षेप किया, ग्राम समुदायों को उसी रूप में रहने दिया है।

वस्तुतः प्राचीन भारत विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्त के आधार पर बना था। उनका विश्वास सत्ता के केन्द्रीकरण में न था। उनका विश्वास समूह के स्वशासन में था।

प्राचीन भारत एक वृहद् ग्रामीण प्रजातंत्र के रूप में बना था। ग्रामीण राजनीति केन्द्रीय राजनैतिक उतार चढ़ावों से स्वतंत्र थी। भारत की संस्कृति की रक्षा उसके ग्रामों और ग्राम गणतंत्रों के द्वारा ही हो सकी है। उसने अनेक राजनैतिक क्रान्तिओं और प्रभुसत्ताओं के परिवर्तन देखे थे। मेगस्थनीज के अनुसार ''भारत के ग्राम समुदाय छोटे–छोटे गणतंत्र हैं, जो प्रायः आत्म निर्भर हैं, और वैदेशिक सम्बन्धों से प्रायः स्वतंत्र है। उनके इसी गुण के कारण उनका अस्तित्व चिरस्थाई है। ग्राम समूहों के इस संघ ने भारत की जनता के रक्षण में कदाचित अन्य सभी तत्वों से अधिक योग दिया है। जबकि अन्य राष्ट्रों में सामान्यतः देखा गया कि उनके बीच युद्ध होते थे। उनमें भूमि का नाश कर उसे ऊसर बंजर बना दिया जाता था। इसके विपरीत भारत में खेत जोतने वालों को पवित्र और एक ऐसा वर्ग मानते थे जिसके कार्यों में हस्तक्षेप न किया जाये। चाहे पड़ोस में ही क्यों न युद्ध हो रहा हो। किसान अपना कार्य बिना खतरे के करते रहे। शत्रु एक दूसरे की भूमि को आग लगाकर या वृक्षों को काटकर शत्रु प्रदेश को हानि नहीं पहुँचाते थे।[9]

यहाँ स्थानीय स्वायत्तता ऊपर से थोपी गई व्यवस्था नहीं थी। बल्कि समाज की संरचना में उपस्थित थी। वह समाज का आत्मतत्व था। शायद इसी कारण सदियों से साम्राज्यवादी ताकतों की गुलामी से आजाद हुये।

lUnHkZ %

1. ईश्वरी प्रसाद, प्राचीन संस्कृति, राजनीति, कला धर्मदर्शन, पृ0 50
2. डॉ0 ए0एस0 अल्टेकर, स्टेट एण्ड गवर्नमेन्ट इन एनशियेन्ट इण्डिया
3. अथर्ववेद, 1, 13, 7
4. वेदकालीन राज व्यवस्था, डॉ0 श्यामलाल पाण्डेय, पृ0 149
5. गुप्त साम्राज्य का इतिहास द्वितीय खण्ड, डॉ0 वासुदेव अग्रवाल
6. नीलकंठ शास्त्री, दक्षिण भारत का इतिहास
7. ईश्वरी प्रसाद, प्राध्यापक संस्कृति, राजनीति, कला धर्मदर्शन
8. नीलकंठ शास्त्री, चोलवंश पृ0 398–99
9. डॉ0 राधाकुमुद मुखर्जी, चन्द्रगुप्त मौर्य एण्ड हिज टाइम्स

*****

bfrgkl fo'y"k.k e lajpukRed fl)kark dh Hkfedk

Mk- fouhr dqekj x#*

भूमिका—इतिहास की प्रमुख विषयवस्तु मानव और उसका कार्य व्यवहार है। प्रसिद्ध इतिहासविद कलिंगवुड के अनुसार, संपूर्ण इतिहास विचारों का इतिहास है। मनुष्य का प्रत्येक कार्य विचारपूर्ण होता है। इतिहास में विचार को प्रधानता देने का तात्पर्य यह है कि विचार ही मानवीय कार्य व्यापार का मूल स्त्रोत और उद्‌गम स्थल है। मानवीय कार्यो और उपलब्धियों का अध्ययन करने से पहले उनके विचार का अध्ययन करना आवश्यक है। संरचनावाद एक नवीनतम अवधारणा है जिसमें मानव मस्तिष्क की संरचना के अध्ययन पर बल दिया जाता है। प्रस्तुत शोधपत्र में इतिहास विश्लेषण में संरचनात्मक सिद्धांतों की भूमिका समझने का प्रयास किया जा रहा है।

संरचनावाद क्या है—समाजशास्त्र में संरचनावादी सिद्धांत का उद्‌गम ज्यॉ पाल सार्त्र के अस्तित्ववाद के विरोधस्वरूप हुआ। सार्त्र का अस्तित्ववादी सिद्धांत व्यक्ति पर केन्द्रित था। उनकी मान्यता थी कि व्यक्ति जो कुछ करता है उसका निर्णय वह स्वयं करता है समाज और सामाजिक संरचना का इसमें कोई हाथ नहीं होता। जबकि संरचनावाद सार्त्र के अस्तित्ववाद के विरोध के रूप में सामने आया। संरचनावादियों ने अपने प्रबंध में कहा कि व्यक्ति कुछ नहीं हैं।उसे स्वतंत्रता नहीं है। वह तो केवल संरचना की कठपुतली मात्र है। अतः ज्यॉ पाल सार्त्र का अस्तित्ववाद व्यक्ति पर अपने आपको केन्द्रित करता है, वही संरचनावाद का मुख्य केन्द्र संरचना या समाज है। यह संरचना ही है जो व्यक्ति के क्रियाकलापों का निर्धारण करती है। दूसरे शब्दों में व्यक्ति बनाम संरचना की बहस में संरचनावादी समाज की निर्णायक शक्ति पर जोर देते हैं।[1] संरचना की परिभाषा का मसला सबसे पहले एस. एफ. नडेल ने अपनी पुस्तक '' दि थ्योरी ऑफ सोशल स्ट्रक्चर'' (1957ई.) में उठाया था। उनके अनुसार ''संरचना का तात्पर्य है : भागों का व्यवस्थित रूप से जमा होना।'' यह

*अतिथि व्याख्याता, इतिहास, शास. छत्रसाल महाविद्यालय, पिछोर, जिला—शिवपुरी, म.प्र.

संरचना सामान्य तथा अपरिवर्तनशील होती है, जबकि इसके भाग साधारण रूप से परिवर्तनशील होते हैं। दूसरे शब्दों में व्यक्ति के व्यवहार पर समाज का नियंत्रण होता है। लेकिन समाज बहुत विशाल होता है। इस समाज के विभिन्न नियम, उपनियम संस्था का रूप ले लेते हैं। इस भॉंति देखें तो सामाजिक संबंधों की एक बनावट है और यह बनावट ही व्यक्तियों के व्यवहार को निर्धारित करती है और नडेल इसी को सामाजिक संरचना कहते हैं।[2] संरचनावाद के अगणित रूपों के बावजूद कुछ विचारकों का इसके विकास में उल्लेखनीय योगदान है। इन विचारकों में मानवशास्त्र में लेवी स्ट्राउस हैं, सामाजिक सिद्धांत तथा दर्शनशास्त्र में अल्थ्युजर हैं, साहित्यिक आलोचना और सांस्कृतिक मामलों में रोलां बार्थस तथा जाक लॉक हैं, इतिहास में मिशेल फूको और दर्शनशास्त्र में जॉक देरिदा हैं। जिसे हम आज उत्तर संरचनावादी सिद्धांत कहते हैं उसमें फूको और देरिदा मुख्य रूप से उल्लेखनीय हैं।[3] क्लाद लेवीस्ट्राऊस फ्रांसीसी संरचनावाद के प्रणेता थे। वे पेशे से मानवशास्त्री थे। उनके संरचनावाद के सिद्धांत पर प्रख्यात भाषाशास्त्रीय सास्युअर के भाषाशास्त्र की पद्धति का प्रभाव पड़ा था। अतः उनके संरचनावाद को समझने के लिए सास्युरियन भाषाशास्त्रीय प्रणाली को समाज संबंधी विचारों के इतिहास में ''भाषिक मोड़ '' (Language Turn) के नाम से जाना जाता है। सास्युरियन भाषाशास्त्रीय पद्धति की दो प्रमुख केन्द्रीय स्थापनाऍ हैं—

1. ध्वनियों की संरचना (Structure of Sound)
2. अवधारणाओं की संरचना (Structure of Concept)

ध्वनियों की संरचना में ध्वनियां एक दूसरे से अलग होने के कारण पहचानी जातीं हैं। इसी तरह अवधारणाएँ भी एक दूसरे से भिन्न होने के कारण समझ में आतीं हैं। लेवी स्ट्राऊस के अनुसार सास्युरियन भाषा चिन्हों की आंतरिक प्रक्रिया को समझा जा सकता है तो मानव मस्तिष्क की संरचना को भी समझा जा सकता है। लेवी स्ट्राऊस ने अपने शोधकार्य द्वारा सास्युरियन तकनीक को समाज और संस्कृति के अध्ययन में उपयोग किया और सामाजिक मानवशास्त्र की नींव डाली। लेवी स्ट्राऊस की पुस्तक ''एलीमेण्ट्री स्ट्रक्चर्स ऑफ किन्शिप'' फ्रेंच भाषा में 1949 ई. में प्रकाशित हुई थी। इस पुस्तक में उनकी मान्यता है कि नातेदारी व्यवस्था का प्रत्येक अंग पृथक अर्थ रखता है जैसे भाषा का प्रत्येक पद अपना अलग से अर्थ रखता है। इतिहास के संरचनावादी सिद्धांत में लेवी स्ट्राऊस ने मानव मस्तिष्क की संरचना को समझने का प्रयास किया है। उन्होंने धार्मिक कृत्यों, पुराण, कथाओं तथा मिथकों का तुलनात्मक अध्ययन करके मानव मस्तिष्क और चिन्तन प्रक्रिया को

समझने का प्रयास किया है और इस ज्ञान के सहारे अनेक उलझनों को सुलझाने की चेष्टा की है। उनकी आलोचना करते हुए कहा गया है कि इतिहास के प्रति उनकी दृष्टि इसलिए सकारात्मक नहीं कही जाएगी क्योंकि उनके तुलनात्मक अध्ययन में ऐतिहासिक आयाम का कोई मूल्य नहीं। ऐतिहासिक घटनाएँ मनुष्य में केवल पुराकथा के रूप में ही शेष रहतीं हैं और पुराकथाओं में कालक्रम का कोई अर्थ नहीं होता। लेवी स्ट्राऊस अपनी संरचनात्मक पद्धति को ऐतिहासिक समस्या सुलझाने पर कभी नहीं लगाते थे। वे आदिम संस्कृतियों और विकसित में स्पष्ट भेद भी करते हैं और आदिम को अकालिक (Timeless) तथा स्थिर अपरिवर्तनशील (Static) मानते हैं। उनके अनुसार मानवशास्त्रीय पद्धति विकसित संस्कृतियों का इसलिए विश्लेषण नहीं कर सकतीं क्योंकि वे 'इतिहास' में होतीं हैं। उनके विकसित रूप में ऐतिहासिकता का आयाम है।[4] संरचनावाद का एक और प्रकार मार्क्सवादी है। इसे फ्रांस और दुनिया के कई और देशों में बहुत बड़ी सफलता मिली है। कामरे इसे संरचनात्मक मार्क्सवाद (Structurel Marxism) कहते हैं। इस धारा में योगदान करने वाले लेखकों में मुख्य रूप से लुई अल्थ्युजर, निकोस पुलोंजास तथा मोरिस गोडलियर है।[5] अल्थ्युजर ने कोई चार पुस्तकें लिखीं हैं। इनमें फार मार्क्सिज्म (For Marxism 1969) एक उल्लेखनीय ग्रंथ है। इसमें मार्क्स के सिद्धांत की व्याख्या नए सिरे से की गई है। इस सिद्धांत में उनका प्रबंध है कि जिस दुनिया को हम देखते है, एक सीमा तक यह दुनिया हमारे सिद्धांत की संरचना द्वारा निर्मित है। एक तरह से कोई भी विज्ञान अपने सैद्धांतिक तत्वों को स्वयं पैदा करता है। यह सिद्धांत द्वारा निर्मित दुनिया हमारी दिन प्रतिदिन की वास्तविक दुनिया से भिन्न होती है।[6] अल्थ्युजर के संरचनात्मक मार्क्सवाद की अवधारणा सरलता से लोकप्रिय हो गई परंतु देखते ही देखते रूस के विघटन के साथ इसका अवसान भी हो गया। इस प्रकार स्पष्ट है कि संरचनावाद की दो धाराएँ सामने आईं। पहला संरचनावाद मानवशास्त्रीय संरचनावाद है जिसे लेवी स्ट्राऊस ने विकसित किया था। उन पर सास्युरियन भाषावाद पर प्रभाव पड़ा तथा दूसरा संरचनात्मक मार्क्सवाद है जिसे अल्थ्युजर ने प्रस्तुत किया। शीघ्र ही इस विचारधारा का अवसान हो गया। इसके उपरांत संरचना की इन दोनों धाराओं से एक नई संरचना का आविर्भाव हुआ जिसे उत्तर आधुनिक संरचनावाद (Post Structuralism) कहा जाता है।

इतिहास में उपयोगिता—इतिहास के संदर्भ में अतीत में हुई घटनाओं, क्रियाओं में भाग लेने वाले मनुष्यों के विचारों के अध्ययन से कई गुत्थियाँ सुलझाईं जा सकतीं हैं। महलों में होने वाले सत्ता परिवर्तन जिनमें कभी कभी

दो तीन लोग ही भाग लेते हैं और वे जनसाधारण की इच्छा को नए जीवन में परिवर्तित कर देते हैं? इतिहास में संरचनावाद इस और इस तरह के अन्य प्रश्नों पर विचार करता है। भारत में प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक होने वाले विभिन्न आन्दोलन किस तरह सामूहिक अचेतन को अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। प्राचीन भारतीय धर्म के अध्ययन का आधुनिक आरंभ श्री हेनरी थामस कोलब्रुक के वेदों पर आधारित खोजपूर्ण लेखन से हुआ।[7] प्राचीन भारतीय धर्म के मार्क्सवादी दृष्टिकोण से अध्ययन के क्षेत्र में पहला महत्त्वपूर्ण योगदान एक दार्शनिक श्री देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय (1959 ई.) ने दिया। इसके बाद डॉ. डी.डी. कोसाम्बी ने धर्म के कई पक्षों पर लेखन कार्य किया।[8] सुवीरा जायसवाल का वैष्णववाद के आरंभिक इतिहास पर लिखा गया मोनोग्राफ संभवतः पहला ऐसा प्रयत्न है जिसमें धर्म के भौतिक आधारों की व्याख्या बिना ऐतिहासिक परिपेक्ष्य को खोए दर्शाई गई है।[9] जब से मनोविश्लेषण विषय अस्तित्व में आया तभी से उसके अग्रगामी विद्वानों ने धर्म के उद्भव और विकास की समस्याओं पर इसे प्रयुक्त करने की चेष्टा की।[10] हाल ही में श्री पाल बी. कार्टराईट (1985 ई.) के गणेश के एक गहन अध्ययन में मिथक के संदर्भ में पारिवारिक संबंधों के मनोवैज्ञानिक महत्त्व का अध्ययन किया।[11] इस प्रकार के अध्ययन यह स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं कि प्राचीन भारतीय धर्म में मनोविश्लेषण का उपयोग अभी तक अनुसंधानिक स्थिति में है और यद्यपि इतिहासकार के लिए उसका उपयोग स्पष्ट किया जा चुका है किंतु दुर्भाग्य से भारतीय धर्म के मनोविश्लेषण प्रधान कुछ अध्ययन अधिकतर व्यवसायिक मनोविश्लेषकों के द्वारा किए गए हैं।[12] इसके अतिरिक्त सामाजिक मानव वैज्ञानिक पद्धति से भी धर्म के अध्ययन किए गए हैं जिनमें सामाजिक संबंधों के आधार पर प्रथाओं, परम्पराओं ओर विश्वासों को समझने की चेष्टा की गई है।[13] परंतु फिर भी अभी इस क्षेत्र में व्यापक संभावनाएँ हैं। मनोविश्लेषण प्रधान अध्ययन न केवल भारत के प्राचीन धार्मिक आन्दोलनों का यथार्थ उजागर कर सकता है, बल्कि हिन्दू धर्म में इन आन्दोलनों की प्रतिक्रिया स्वरूप सुधार और परिवर्तनों को भी व्याख्यायित कर सकता है। इसके अतिरिक्त समाज के उच्चवर्ग में स्वीकृत विभिन्न धार्मिक, दार्शनिक विचारधाराओं को सामान्य जनता ने भिन्न रूप में स्वीकार किया इस संदर्भ में भी मनोविश्लेषण हमारे ज्ञान को समृद्ध कर सकता है। अभी इस क्षेत्र में कई नये अध्ययन किए जा सकते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि घटनाओं और अतीत के रंगमंच के अभिनेताओं के चेतन और अचेतन मन को समझने की दृष्टि से संरचनावाद इतिहास के अध्ययन में महत्त्वपूर्ण साबित होता है।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि वास्तव में इतिहास में संरचनावाद एक महत्त्वपूर्ण अवधारणा है जिसमें मानव मस्तिष्क की संरचना के अध्ययन पर बल दिया जाता है। प्रमुख संरचनावादी विद्वानों में लेवी स्ट्राऊस, जान लॉक, अलथ्यूसे एवं रोलॉ बार्थ आदि उल्लेखनीय हैं। लेवी स्ट्राऊस के अनुसार मनुष्य और उसके क्रियाकलापों को समझने के लिए उसकी चिन्तन प्रक्रिया तथा उसके मस्तिष्क को समझना आवश्यक है। लेवी स्ट्राऊस ने आदिम जातियों के मिथकों के अध्ययन के माध्यम से मानवीय मस्तिष्क की संरचना को समझने का प्रयास किया। 1970 के दशक से संरचनावाद अपने आंतरिक तनावों के कारण से कमजोर पड़ने लगा तथा जटिल, विरोधाभासी एवं आदर्शवादी पाया गया। अतः अब उत्तर संरचनावाद का जन्म एवं विकास हुआ। फिर भी अतीत की घटनाओं और ऐतिहासिक व्यक्तियों के चेतन, अचेतन मन को समझने की दृष्टि से संरचनवाद महत्त्वपूर्ण साबित होता है।

सन्दर्भ :

1. दोषी, एस.एल., आधुनिकता, उत्तर आधुनिकता एवं नव समाजशास्त्रीय सिद्धांत, जयपुर, 2002, पृ. 366
2. वही, पृ. 367
3. वही, पृ. 374
4. दुबे, सीताराम, समसामयिक इतिहास लेखन, प्रविधि और प्रवृत्तियाँ, दिल्ली 2001, पृ. 13 (अध्यक्षीय उद्‌बोधन)
5. दोषी, एस.एल. पूर्वोल्लिखित, पृ. 377–378
6. वही, पृ. 379
7. चक्रवर्ती, कुणाल, ''रीसेन्ट एप्रोचेज टू दि हिस्ट्री ऑफ रिलीजन'' (सं.) थापर रोमिला, रीसेन्ट पर्सपेक्टिव्ज आन अर्ली इण्डियन हिस्ट्री, मुंबई, 1996, पृ. 180
8. वही, पृ. 183
9. वही, पृ. 185
10. वही, पृ. 189
11. वही, पृ. 193
12. वहीं, पृ. 194
13. वही, पृ. 195

*****

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में ग्राम्य संस्कृति : पंजाब के विशेष सन्दर्भ में

डॉ. श्रीमती भारती*

लोकजीवन में ग्राम्य संस्कृति का अपना विशेष महत्व है। ग्रामीण जीवन ने ही लोक जीवन को व्यवस्था प्रदान की है। ग्रामीण जीवन और ग्रामीण संस्कृति के अंतर्गत कृषि प्रकृति–परिवेश, परिवार, पंचायतें, कुटीर उद्योग–धन्धे, ग्राम्य जीवन की समस्याएँ आदि का चित्रण किया जाता है। हिन्दी उपन्यासों में ग्राम्य संस्कृति की यह गरिमा स्थान दर्शनीय है। इस सन्दर्भ से पंजाब की बात की जाए तो हमारे समक्ष तथ्य उजागर होता है कि पंजाबी लोक जीवन की सम्पन्नता का मूल कारण वहाँ की सम्पन्न कृषि है। पंजाब का किसान देश का सम्पन्नतम किसान है, और उसी के आधार पर उसने अपनी साख बनाई है। पंजाब काफी समय पहले से ही कृषि प्रधान क्षेत्र माना जाता रहा है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों ने जहाँ भी पंजाबी लोक जीवन को उठाया है वहाँ उसके ग्रामीण पक्ष, प्रकृति पक्ष, कृषि पक्ष, परिवारिक पक्ष, पंचायत पक्ष तथा कुटीर उद्योग धन्धों का चित्रण अवश्य किया है। उक्त शोध पत्र में पंजाब की इसी ग्रामीण संस्कृति के सौन्दर्य को परखने का प्रयास किया जा रहा है।

ग्राम्य संस्कृति के अंतर्गत प्रकृति की अपनी महती भूमिका है। प्रकृति ने ग्राम्य संस्कृति को बनाया है और ग्राम्य संस्कृति ने ग्राम्य जीवन को पाला पोसा है, उसे संस्कारित किया है। सर्दी का मौसम है वह चौड़ा रास्ता भीगा–भीगा सा दिखाई देता है, जैसे वह मारे सर्दी के सिकुड़ता हुआ गाँव की ओर सरकता चला जा रहा है। .... खेतों में उगे हुए हर–भरे पौधों से भाप उठ रही है। रात भर धुंध की रजाई ने इन खेतों को अपनी चपेट में लिये रखा, लेकिन जब सूर्य देवता उपस्थित हुए तो पहले तो धुंध और कोहरे ने उनको भी मुंह चिड़ाया, लेकिन सूर्य देवता ने उत्तेजित होकर जो अपनी किरणों के भाले फेंके तो धुंध कसमसाने लगी और पौधों की जड़ों, डन्ठलों और पत्तियों पर सोयी हुई

*बी.एल 56, दीनदयाल नगर, ग्वालियर, म0प्र0

नमी भाप बनकर आकाश की ओर उठने लगी।[1] सूजस केसर की हरी भरी पहाडियां अधिक दूर नहीं थी इस गांव से यही कारण था कि वैसाख–जेठ की तपती दुपहरी के बाद साए ढलते ही वायु मण्डल में शीतलता भरने लगती। गांव के हाट मे चौडे रास्ते की काली रेतीली मिट्टी में उगे धरेख और वेरी के दरस्तों के नीचे खाटें और मोढे बिछ जाते और गांव के निठल्ले, बड़े–बड़े टोपी–साफी पीने के लिये आ बैठते।[2] रामस्वरूप अजखी के ''कहानी'' एक गांव की में तो प्रकृति के अगणित रूप देखने को मिलेगे और वे भी ग्राम्य जीवन को साथ लेकर और साकार करते हुए। यथा– चैत के खुले–खुले दिन। न गरम न सर्द। गेहूँ पूरे जोवन पे थे। बालियों की कोख में मोतियों जैसे दाने तक रहे थे। सुबह के वक्त ठण्डी–ठण्डी पुरवैया बहती और वातावरण में हरियाली का दृश्य आँखों को अच्छा लगता। गेहुँओं की चढत देखकर किसानों की आँखें जुड जाती।[3] निश्चित ही प्रकृति के बिना पंजाबी ग्रामीण जीवन अधुरा है।

इसी प्रकार खेती किसानी ग्राम्य संस्कृति का आधार है। कृषि ने ही ग्राम्य संस्कृति को विविध आयाम प्रदान किये हैं। स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी उपन्यासों में पंजाबी लोक जीवन की चर्चा के समय खेती को जाट की माँ कहा गया है। वह किसान (जाट) की मर्यादा है, इज्जत है। जिन्होंनें सरसों और चने बोए थे, काट लिये। गेहूं काटने की तैयारी जोर–शोर से हो रही थी। ...थ्रैशर जगह–जगह लगते जा रहे थे।[4] जब कृषि की बात कही जाती है तब कृषि से जुडी बहुत सी अन्य बातें भी प्रकाश में आती है। हल–बैल, रहट कुआँ, जुगाली–दूध दोहन, खलिहान–रखवाली जैसी अनेक चर्चाएँ इस विषय को संदर्भित करती है। वे खेंतों के अन्दर ही अन्दर पौधों की ओट में छिपे–छिपे चले जा रहे थे। उस समय गाँव के बाहर का रहट चल रहा था और दो बैलों के पीछे गद्दी पर एक आदमी बैठा ऊंघ रहा था। ...देर तक हांकने वाले की आहट न पाकर वे रूक भी जाते और खड़े–खड़े जुगाली करने लगते ...बैल फिर सींग हिलाते और गले में पड़ी घंटियाँ बजाते गोल चक्कर कांटने लगते।[5]

ग्रामीण परिवेश लोकजीवन का आधार है। ग्रामों से ही कस्बे और नगर महानगर बने है। स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी उपन्यासों में पंजाबी ग्रामीण परिवेश का सजीव चित्रण हुआ है। पंजाबी समाज की मान्यताएँ, तीज–त्यौहार, रीति रिवाज नैतिकता आदि को उपन्यासकारों ने भली–भाँति उकेरा है। कुँआ गाँवों की पुरानी संस्कृति का प्रतीक है। पुराने समय में कुँआ भी जातीयता की पकड़ में थे। बड़े आदमियों के कुँओं से छोटी जाति के लोग पानी नहीं भर सकते थे। पनघट संस्कृति का विकास भी गांवों के कुँओं से ही हुआ है, जहाँ गाँव की स्त्रियाँ पानी भरने को एकत्र होती थी। एक पुराना कुँआ था। यहाँ का पानी बहुत ठण्डा और मीठा था।

सारा गाँव ...पीने के लिये यही का पानी इस्तमाल करता है। नहाने–धोने के लिये अन्य रहटों के पानी का उपयोग कर लिया जाता।[6] जाति भेद भी वहाँ के ग्रामीण परिवेश में है। कुम्हार, जुलाहे, नाई मोची इत्यादि नीचे दरी पर ही बैठते थे।[7] आंगन कोठा, में जाति भेद का भाव खूब उभर कर आया है। अधूरे की छाया मात्र पड़ जाने से सत्तभिराई के घड़े के जल का भ्रष्ट हो जाने की आशंका व्यक्त की गई है।[8] स्वातंत्र्योत्तर सामाजिक उपन्यासों में परिवारों का चित्रण है और उनमें पंजाबी लोक जीवन को व्यक्त किया गया है। कृष्णा सोबती के मित्रों मर जानी में गुरूदास–धनवंली के परिवार तथा मायावती के परिवार का चित्रण है। इन परिवारों में ह्रासोन्मुखता की दृष्टि है। रामस्वरूप अणखी के ''कहानी'' एक गाँव की, में गाँव कोठे, खडकसिंह के एक परिवार की तीन पीढ़ियों की यथार्थ कथा है। यह उपन्यास पंजाब की सौंधी धरती की महक, गेहूँ के लहलहाते खेतों और वहाँ की मौज भरी जीवन संस्कृति की सुदंरता का सजीव चित्रण करता है और साथ ही बदलती हुई राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियों नर–नारी के प्रणय प्रसंगों, आर्थिक शोषण और अत्याचार को भी पूरी निर्भयता के साथ उद्घाटित करता है।[9] आँगन कोठा में गणपति–रामरूखी के परिवार तथा नानकी परिवार का चित्रण है। इन परिवारों में नारी की स्थिति कमजोर है और वह पुरुष द्वारा शोषित है। देश के जातीय जीवन में पंचायतों का अस्तित्व बहुत पुराना है। ग्रामीण लोक जीवन में गांव और जाति की समस्या का समाधान जातीय पंचायतों द्वारा होता रहा है। पांच पंच मिलि कीजे काजा, हारे जीते होय न लाजा'' वाली कहावत यहाँ की पंचायतों को समर्थन देती है।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में पंजाबी लोक जीवन में पचायतों की चर्चा रही है। कहानी एक गाँव की में हरनामी कई जगह बैठने–जवानी का लुत्फ लेने के बांद अपना सबकुछ लुटा देने के बाद नाजर के घर में आ गई। हवलदार दसौधंसिंह डूमवाली की पंचायत लेकर आ गया। ...कोठों की पंचायत भी जुड़ गई। हरनामी ने चुन्नी उतारकर पंचायत के पैरों धर दी। अब मैं नागर के पास ही रहूंगी। ...इस बूढ़े के साथ मत भेजों मुझे। मेरी लाज रख लो ...कोठों ने नाजर को पूरा सहारा दिया। नाजर हरनामी को साथ लेकर सेल बराह गया और गुरूद्वारे में जाकर देग करवाई।[10] ग्रामीण जीवन कुटीर धन्धों से न केवल अपने कृषि जीवन तथा दैनिक कार्य व्यापारों में सहयोग पाता है उसका आर्थिक जीवन भी सुधरता है। पंजाबी लोक जीवन का जो आर्थिक विकास हुआ है वहाँ की कृषि में जो सम्पन्नता आई उसके मूल में वहाँ का श्रम, पुरुषार्थ और कुटीर धंधे ही है। हिन्दी के स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में पंजाबियो की छोटे धन्धों के प्रति उनके श्रम पूर्ण–समर्पण को दर्शाया है। बढईगिरि, लुहारगिरि, हस्तशिल्प के रूप में

सिलाई–कढ़ाई, दरिंया–कम्बल तथा अन्य प्रकार के वस्त्रादि बनाना होजरी का सामान जैसे अनेक क्रियाकलापों का हिन्दी उपन्यासों में चित्रण है। खेती में काम आने वाले औजरों का निर्माण भी इसी में शामिल है।

ग्राम्य जीवन मे उक्त विषयों के अतिरिक्त जातीय एकता और साम्प्रदायिकता का विष दोनों मानसिकता देखने को मिलती है। भीष्म साहनी के तमस में साम्प्रदायिकता का विष है तो दूसरी ओर जातीय एकता, धार्मिक एकता, भावनात्मक एकता। बहुत बड़ी जियारत गाह है एक तरफ गरीब नवाज सखरशाहका थान। दूसरी तरफ बाबा नानक ...पास ही एक ठाकुर द्वारा है। एक तरफ अपने भैरों का मन्दिर है।[11] काले कोस मे भी जातीय प्रेम की भावना है। चार गांव के बाहर बडा दर्द भरा दृश्य देखने में आया। हिन्दु सिक्ख पुरुष, स्त्रियाँ, बच्चे, बूढ़े, खानाबदोशों की तरह बाहर निकले और खेतों में जमा हो गये। मुसलमान फूट–फूट कर रो रहे थे। ...विदा होते समय गोविदी और हुसैना को एक–दूसरे से अलग करना मुश्किल हो गया द्रोणवीर कोहली के आंगन कोठा मे हिन्दू–मुस्लिम विद्वेष का भाव है जिन्दगीनामा में भी इस समस्या को उठाया गया है।

निष्कर्षतः स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों के पंजाबी लोक जीवन में ग्राम्य संस्कृति अपनी अलग पहचान रखती है।

lUnHk %

1 रावी पार, पृ0 8
2 आंमन कोठा/द्रोणवीर कोहली, पृ0 8
3 कहनी एक गांव की/रामस्वरूप अणखी, पृ0 158
4 कहनी एक गांव की /रामस्वरूप अणखी, पृ0 216
5 रावी पार, पृ0 72
6 काले कोस/बलवंदसिंह, पृ0 93
7 काले कोस/बलवंत सिंह, पृ0 47
8 आंगन कोठा/द्रोणवीर कोहली, पृ0 82–83
9 कहनी एक गांव की /रामस्वरूप अणखी, पृ0 8
10 कहानी एक गाँव की/रावस्वरूप अणखी, पृ0 112–13
11 जिन्दमीनामा/कृष्ण सावती, पृ0 125
12 काले कोस /बलवंत सिंह, पृ0 298–299

*****

xkeh.k ykd lLÑfr d ifjijkRed Lo:ik dk fo'y"k.kkRed v/;;u

MkO jktdekj feJk*

लोक संस्कृति एक विस्तृत अवधारणा है। व्यापक रूप से यह किसी समाज के जनसामान्य की विचार प्रणालियों, मान्यताओं, विश्वासों, जीवन शैली, रहन–सहन, खान–पान, वेशभूषा, आवासीय स्वरूप, प्रथाओं, परंपराओं, धार्मिक कर्मकाण्डों, संस्कारों, अनुष्ठानों गीतों एवं कलाकृतियों आदि की सामूहिक अभिव्यक्ति के समतुल्य है।

लोक संस्कृति की अवधारणा का प्रतिपादन राबर्ट रेड फील्ड ने किया जिसका ग्रामीण समाजशास्त्र के अध्ययन में विशेष महत्व है। इसी अवधारणा के संदर्भ में रेडफील्ड ने अनेक अन्य अवधारणाओं को भी प्रस्तावित किया है। आपने एक नगर, एक कस्बे। एक गॉव तथा एक जनजातीय ग्राम का तुलनात्मक रूप से अध्ययन किया।[1] इसी प्रकार आस्कर लेविस[2] ने मैक्सिको तथा भारत के दो गॉवों का रूथ बेनिडिक्ट[3] ने तीन जनजातीय समाजों का एवं ओपलर तथा सिंह[4] ने पूर्वी उत्तर प्रदेश के दो गॉवों का लोक संस्कृति के संदर्भ में तुलनात्मक अध्ययन किया। रेडफील्ड का अध्ययन इन सभी की तुलना में विशेष रूप से महत्वपूर्ण था।

रेड फील्ड के लोकसंस्कृति की अवधारणा के विचार–स्रोत के रूप में तीन विचारकों का अध्ययन विशेष रूप से उल्लेखनीय है –प्रथम, एच0एस0 मेन ने दो प्रकार की सामाजिक व्यवस्थाओं का वर्णन किया है। एक समाज व्यवस्था तो वह है जिसके आधार के रूप में प्रस्थिति तथा नातेदारी संबंध का महत्व पाया जाता है। जबकि दूसरे प्रकार की समाज व्यवस्था के आधार के रूप में क्षेत्र तथा सामाजिक समझौते का। मेन की मान्यता है कि समाज का विकास प्रथम प्रकार की समाज व्यवस्था से दूसरे प्रकार की समाज व्यवस्था यानि कि प्रस्थिति से समझौते की ओर हो रहा है। प्रथम प्रकार की समाज व्यवस्था की विशेषताओं ने रेडफील्ड को लोक समाज और लोक संस्कृति के बारे में विचार प्रदान किया।

*असि0 प्रो0, समाजशास्त्र विभाग, मड़ियाहूँ पी0 जी0 कॉलेज, मड़ियाहूँ, जौनपुर, उ0 प्र0

द्वितीय, एफ0 टॉनीज– ने समाज को दो प्रकारों में बॉटा है– (1) समाज और (2) समुदाय। टॉनीज ने इस वर्गीकरण के आधार पर बताया है कि प्राचीन समय में समाज के संगठनों का रूप बहुत साधारण था, जबकि आधुनिक समय में यह रूप बहुत जटिल होता जा रहा है।

तृतीय, दुर्खीम– ने अपनी रचना 'समाज में श्रम विभाजन' में दो प्रकार के सामाजिक संगठनों का उल्लेख किया है। एक यांत्रिक एकता (संपूर्ण एकता) प्राचीन काल के आदिम समाजों में और सावयवी एकता (भिन्नताओं एवं सामाजिक परिवर्तनों का पाया जाना) आधुनिक समाजों में पायी जाती है।

उपर्युक्त विद्वानों के अध्ययनों से प्रभावित होकर रेडफील्ड ने लोक संस्कृति की अवधारणा प्रतिपादित की। प्रारंभ में आपने इसके लिए 'कृषक संस्कृति' (Peasant Culture) शब्द का प्रयोग किया। यहॉ पर इस बात का ध्यान रखा जाना आवश्यक है कि जिन अर्थो में रेडफील्ड ने 'कृषक संस्कृति' शब्द का प्रयोग किया उन्हीं अर्थो में जार्ज एम0 फोस्टर' ने लोक संस्कृति शब्द का। इस प्रकार 'कृषक संस्कृति' एवं 'लोक संस्कृति' एक दूसरे के पर्यायवाची शब्द हैं।

ykd lLdfr dk vFk % लोक समाज की संस्कृति को ही लोक संस्कृति के नाम से पुकारा जाता है। लोकसमाज को रेड फील्ड ने एक ऐसा समाज माना है, जिसमें नगरीय समाज से विपरीत प्रकार की विशेषतायें पाई जाती हैं। यह एक ऐसा समाज है, जिसका आकार छोटा होता है तथा जिसमें अकेलापन, अशिक्षा, समानता, समूह दृढ़ता की भावना एवं जीवन का रूढ़िगत ढ़ंग पाया जाता है। ऐसे समाज की अन्य विशेषताओं के रूप में कानून का अभाव, परंपरागत प्रकार का व्यवहार जो प्रमुखतः वैयक्तिक एवं आलोचना रहित होता है, परिवार तथा नातेदारी समूह के लोगों के क्रियाकलाप में एकता, धर्म का प्रभाव, अर्थ व्यवस्था का बाजार के बजाय प्रस्थिति पर आधारित होना तथा बुद्धिजीवी वर्ग के चिन्तन का अभाव आदि प्रमुख हैं।

रेडफील्ड, दुर्खीम तथा टॉनीज आदि विद्वानों के अनुसार लोक समाज की उत्पत्ति प्राकृतिक कारणों का परिणाम है। ऐसे समाज का आधार नातेदारी, मित्र समूह और पड़ोस हैं। ऐसे समाज में विभिन्न कार्य लोकरीतियों, रूढ़ियों तथा धर्म पर आधारित होते हैं। ऐसे समाज के लोगों की संस्कृति को ही लोक संस्कृति का नाम दिया गया है।

ykd lLdfr dh fo'k"krk;| %

1- ykd lLdfr ekf[kd lkLdfrd ijijk g % लोक संस्कृति प्रत्यक्ष रूप से पुस्तकों पर आधारित नहीं है और मौखिक रूप से ही एक दूसरे को

हस्तान्तरित की जाती है। लोक संस्कृति से संबंधित धर्म, तत्व–मीमांसा, साहित्य और संगीत, आदि का ज्ञान प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को विशेष प्रशिक्षण प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

2- ykd lLdfr dk thou dk ,d lkekU; <x dk :i e n[kk tk ldrk g % मैकिम मैरियट[5] ने उत्तर प्रदेश के किशनगढ़ी ग्राम के अध्ययन से अनेक उदाहरण दिये हैं। आपने बताया है कि इस ग्राम में 'बासुरपूजा' या 'देवी–देवता की पूजा, कुॅए के देवता का मेला, बरहो बाबू की पूजा ऐसे मेले या त्यौहार हैं, जिनका अभिजात संस्कृति या दीर्घ परंपरा के साथ कोई प्रकट संबंध नहीं है। यहाँ के लोग दीपावली के दिन अपने मकानों में साधारणतः दीवाली पर 'सोंरती' नामक देवी की चावल के आटे की एक प्रतिमा बनाते हैं और विभिन्न तरीकों से उनकी पूजा करते हैं, तत्पश्चात् वे देवी से समृद्धि एवं परिवार और पशुओं की सुरक्षा हेतु प्रार्थना करते हैं। ग्राम के कुछ लोग लक्ष्मी और सौरती को एक ही मानते हैं, परन्तु अधिकांश इन्हें अलग–अलग मानते हैं। सौरती को लक्ष्मी से भिन्न मानने वालों का कहना है कि लक्ष्मी केवल धनी लोगों की देवी है।

किशनगढ़ी ग्राम में ही रक्षाबंधन के दिन इस त्यौहार के अतिरिक्त एक अन्य त्यौहार मनाया जाता है, जिसे यहॉ 'सैलूनों' के नाम से पुकारते हैं। इस अवसर पर युवा पत्नियॉ अपने माता और भाई–बहिनों के यहॉ रहने आती हैं। इस दिन सैलूनों के दिन उनके पति भी उन्हें वापस लेने हेतु अपनी ससुराल आते हैं। इस दिन अपने पतियों के साथ वापस लौटने के पूर्व पत्नियॉ और उनकी अविवाहित बहनें अपने भाइयों के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने हेतु उनके कान और सिर पर जौ की बालियॉ रखती हैं। क्योंकि भाई अपनी बहनों से मुफ्त भेंट के रूप में कुछ भी स्वीकार नहीं करते। अतः बदले में उन्हें कुछ सिक्के व रूपयें आदि देते हैं। फिर भाई अपने जीजा के साथ खेलकूद में भाग लेते हैं। इसी दिन यहॉ रक्षाबंधन का त्यौहार जो कि अभिजात संस्कृति से संबंधित हैं, भी मनाया जाता है। मैकिम मैरियट की मान्यता है कि यह संभव है कि सौरती की पूजा एवं सैलूनों जैसी लघुपरंपरा या लोक संस्कृति से संबंधित त्यौहारों से ही दीपावली एवं रक्षाबंधन जैसे अभिजात संस्कृति से संबंधित त्यौहारों की उत्पत्ति हुई। लोक संस्कृति की अपनी स्वयं की विशिष्टता है। लोक–संस्कृति में स्वयं की सृजनात्मक क्षमता भी पाई जाती है, इसका क्षेत्र व्यापक हैं।

3- ckf)d] /kkfeZd ,o ufrd thou dh nf"V l vi.k % लोक संस्कृति अपने आप में बौद्धिक, धार्मिक एवं नैतिक जीवन की दृष्टि से पूर्ण नहीं है, उसकी अभिजात सांस्कृतिक उपसंरचना के साथ निरंतर अन्तः क्रिया होती रहती है, ग्रामीण समुदाय ने अपनी लोक संस्कृति को अभिजात संस्कृति के साथ निरन्तर अन्तः क्रिया के उपरान्त भी बनाये रखा है।

4. लोक संस्कृति का अभिजात संस्कृति से आदान–प्रदान होता है :

लोक संस्कृति और अभिजात सांस्कृतिक तत्वों का आदान–प्रदान होता रहता है और यह चक्रीय प्रक्रिया के रूप में होता है। लोक संस्कृति अभिजात संस्कृति से कुछ सांस्कृतिक तत्वों को ग्रहण करती है, उनके स्वरूप में कुछ परिवर्तन करती है और उन्हें अपने में आत्मसात कर लेती है। इसी प्रकार अभिजात संस्कृति भी लोक संस्कृति से कुछ सांस्कृतिक तत्वों को अपनाती है, उनको परिष्कृत करती है और अपने में एकीकृत कर लेती है। इस प्रकार एक लम्बे समय से सांस्कृतिक तत्वों का आदान–प्रदान होता रहा है।

5. व्यापकता– प्रो0 उन्नीथान तथा सहयोगियों ने बताया है ''प्रत्येक ग्राम में कुछ ऐसे देवता पाये जाते हैं जो उस ग्राम विशेष स्वयं के हैं, लेकिन यदि उनका तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन किया जाए तो मालूम पड़ेगा कि जनसाधारण के विश्वास और अनुष्ठान की प्रणालियॉ मौलिक रूप से करीब–करीब संपूर्ण भारत में एक सी है, यद्यपि अभिजात धार्मिक प्रणालियों से कुछ मामलों में ये भिन्न भी है।''[6] लोक संस्कृति से संबंधित कुछ ऐसे नामी देवी–देवता हैं, जिनके फैलाव का क्षेत्र संपूर्ण भारत है जो सभी ग्रामों में सामान्य रूप से पाये जाते हैं। उदाहरण के लिए, नाग देवता और शीतला माता की पूजा संपूर्ण भारत में जनसाधारण अर्थात लोक संस्कृति से संबंधित सभी लोगों के द्वारा की जाती है। इस प्रकार लोक संस्कृति के फैलाव का क्षेत्र व्यापक है साथ ही सृजन करने की शक्ति, इसके अतरिक्त लोक संस्कृति में सरलता, व्यावसयिकता का अभाव, सामूहिक सहभागिता, सृजन करने की शक्ति और अर्द्ध संस्कृति भी पाई जाती है।

lUnHkZ %

1. Robert Redfield, Folk Culture of Yucatan- Chicago Press 1941.
2. Oscar Lewis, Peasant Culture in India and Maxico in Village India ed. by Mckim Marriot.
3. Ruth Benedict Patterns of Culture- 1935.
4. Morris E. Opler and R. D. Singh, Two Village of U.P. 1952.
5. Mckim Marriott- Life Communities in an Indigenous Civilization in Village India. ed. by Mckim Marriott PP. 175- 224
6. T. K. N. Unnithan, Indradev and Yogendra Singh- Towards a Sociology of Culture in India- P. 25

*****

Xykcy okfeZx&,d Hk;kog fLFkfr

MkO jked`".k ik.Ms;*

पर्यावरण एक ऐसा बहुश्रुत शब्द है, जिसमें सारे विश्व की चिंता समाहित है। जलवायु परिवर्तन सम्बन्धित IPCC रिपोर्ट ने दुनिया के सभी देशों को सोचने पर मजबूर कर दिया है, लेकिन फिर भी कई ऐसे विकसित राष्ट्र है, जो पर्यावरण के प्रदूषण को मजाक समझ रहे है और अपने कर्तव्यों से विमुख हो रहे है। अमेरिका जो कि सर्वाधिक प्रदूषण उत्पन्न करता है, अपने आर्थिक विकास में बाधा की दुहाई देकर पर्यावरण सम्बन्धित समझौता से अलग रहना चाहता है, कुछ इसी तरह की चाल आस्ट्रेलिया की भी है। जब तक प्रमुख राष्ट्र आगे न आए तो ऐसे देशों के समझौतों पर हस्ताक्षर करने से क्या लाभ जो बिल्कुल न के बराबर ग्रीन हाउस गैस उत्पन्न करते है। हम यह नहीं कह रहे है कि विकासशील देशों की जिम्मेदारी कम है, जलवायु परिवर्तन की समस्या वैश्विक है और इसका सामना वैश्विक स्तर पर किया जाना चाहिये।

पर्यावरण संगठन की प्रमुख सुनीता नारायण ने कहा है कि ''अब समय आ गया है कि हम अपनी मूर्खता से बाहर निकले और निश्चित करें कि हमें तीव्र विकास चाहिये या पर्यावरणीय सुरक्षा''। दुनिया के सभी मनुष्य मिलकर लगभग 8 अरब मीट्रिक टन कार्बन सालाना वायुमण्डल में छोड रहे है, जिसकी वजह से $CO2$ आदि गैसों की वातावरण में सान्द्रता बढ़ रही है और ओजोन परत में दिन–प्रतिदिन क्षरण के कारण प्रकृति में बदलाव आ रहा है, कहीं भारी वर्षा तो कहीं सूखा, कहीं लू तो कहीं ठण्ड, कहीं बर्फ की चट्टानें टूट रही है, तो कहीं समुद्री जल स्तर में बढ़ोत्तरी हो रही है। आज जिस गति से ग्लेशियर पिघल रहे हैं, इससे भारत और पड़ोसी देशों को खतरा बढ़ सकता है। ग्लोबल वार्मिंग से फसल चक्र भी अनियमित हो जायेगा, इससे कृषि उत्पादक्ता भी प्रभावित होगी, मनुष्यों के साथ–साथ पशु–पक्षी भी इस प्रदूषण का शिकार हो रहे हैं। ग्लोबल वार्मिंग में सर्वाधिक योगदान ब्व2 का है।

IPCC की रिपोर्ट मे इस बात की भी चेतावनी दी गयी है कि समस्त विश्व के पास ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन कम करने के लिये मात्र 10 वर्षो का समय है,

*असि0प्रो0, शिक्षाशास्त्र विभाग, महाराज बलवन्त सिंह पी0जी0 कॉलेज, गंगापुर, वाराणसी उ0प्र0

यदि ऐसा नहीं होता है, तो समस्त विश्व को इसका परिणाम भुगतना होगा। कुछ वैज्ञानिकों ने निष्कर्ष निकाला है कि वैश्विक तापन से पृथ्वी की अपनी धुरी पर धूमने की गति में लगातार कमी होती जा रही है। जर्मनी के वैज्ञानिकों के एक शोध के अनुसार–भविष्य मे पैदा होने वाली सन्तान में लड़कों की संख्या बढ़ेगी। अभी तक के इतिहास में 1990 का दशक सर्वाधिक गम रहा है।

Xykcy okfeZx e fofHkUu n'kk dk ;kxnku

संयुक्त राज्य अमेरिका	30.3 %
यूरोप	27.7 %
सेवियत संद्य	13.7 %
भारत, चीन और विकासषील एषिया	12.2 %
दक्षिण और मध्य अमेरिका	3.8 %
जपान	3.7 %
पश्चिमी एषिया	2.6 %
अफ्रीका	2.5 %
आस्ट्रेलिया	1.1 %
कनाडा	2.3 %

Xykcy okfeZx d lidr&

- फैलती बीमारियाँ,
- ऋतुओं का समय पूर्व आगमन,
- वनस्पति और जीवों के क्रिया–कलाप मे परिवर्तन,
- पानी के ताप मे वृद्धि से मूँगाभित्ति संकट में,
- भारी वर्षा, बाढ़, बर्फबारी, सूखा आदि।

Xykcy okfeZx d iHkko&

1. तापमान में तीव्र बढ़ोत्तरी, 2. समुद्री जलस्तर में वृद्धि, 3. पहाड़ों से पिघलते ग्लेशियर, 4. जल संकट, 5. अनियंत्रित फसल चक्र, 6. जल वाष्पीकरण में वृद्धि।

Xykcy okfeZx de djus d mik;&

1. CO_2 का स्तर कम किया जाए।
2. विभिन्न माध्यमो से कूड़ा करकट कम करें।
3. बिजली के उपकरणों के अनावश्यक प्रयोग से बचें।
4. वनों का संरक्षण करें।
5. आम बल्बों के स्थान पर ब्थ्स का प्रयोग करें।

6. वृक्षारोपण कार्यक्रम चलाया जाए।
7. आक्सीजन के लिए समुद्रों और वनों का बचाव आवश्यक।पर्यावरण संरक्षण की दिशा में कुछ प्रयास–

पर्यावरण संरक्षण कोई व्यक्तिगत समस्या नही, बल्कि यह एक वैश्विक समस्या है। विश्व के कई वैज्ञानिकों और पर्यावरणविदों ने आगाह किया है कि यदि पर्यावरण संरक्षण के लिए कोई महत्वपूर्ण कदम नहीं उठाया गया, तो आने वाले दिनों में तस्वीर भयानक होगी, अगर हम इस बात का ध्यान नहीं देते, तो यह तात्कालिक विकास के लिए दूरगामी मौत की अनदेखी होगी।

l>ko % सम्पूर्ण संसार को वर्तामान तबाही से बचाना तभी सम्भव है जब प्रदूषण के विरोध में जबरदस्त मुहिम छेड़ी जाय और यह पुकार हर जन के अन्तःकरण से निकले और नैतिक कर्मठता बन कर दिखायी पड़े। अतः इसके लिये यह जानना आवश्यक है कि हमारी पर्यावरण के प्रति क्या धारणा व दृष्टिकोण है, क्योंकि मानवीय सोंच, विचार और अभिवृत्ति में आगे परिवर्तन किया जाय, साथ ही इको फ्रेंडली तकनीकी का विकास किया जाय, जिससे समय रहते पर्यावरण को सुरक्षित रखकर मानव अस्तित्व की रक्षा की जाय क्योंकि पर्यावरण की समृद्धि ही संसार की समृद्धि है। आज पर्यावरण संरक्षण के प्रति भावी पीढ़ी को सजग करने की आवश्यकता है, जिससे भावी पीढ़ी की जीवन यात्रा कुंठित, त्रस्त व रूग्ण न हो। अतः उन्हें पर्यावरण शिक्षा का ज्ञान देकर अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय, पारिवारिक व व्यक्तिगत समस्या को सुलझाने के लिये प्रेरित करना है।

lUnHkZ :

1. पाण्डेय. राम सकल पाण्डेय, भारतीय शिक्षा की समसामयिक समस्याएँ, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा, पृ0 376–396
2. राजपूत. सरला, पर्यावरण अध्ययन, इनसाइक्लोपीडिया ऑफ एजूकेशन, पृ0 659–662
3. वर्मा, मालवीय, विज्ञान विषय में उपलब्धि पर पर्यावरण के प्रति अभिवृत्ति का प्रभाव, भारतीय आधुनिक शिक्षा, जुलाई 2005, पृ0 88–95
4. सिंह. कृष्ण पाल, बिगड़ता पर्यावरण, सामान्य ज्ञान दर्पण, दिसम्बर 2007, पृ0 726
5. श्रीवास्तव. मयंक, पर्यावरण प्रदूषण की भयावह तस्वीर, प्रतियोगिता दर्पण, सितम्बर 2007, पृ0 296 से 298

*****

xhrk dk 'kS{kd n'kZu dh orZeku ;qx esa vko';drk

f'k[kk frokjh*
f'kok 'kqDyk**

lkjka'k % आधुनिक युग विज्ञान का युग है। गीता का वास्तविक आवश्यकता आधुनिक युग में ही है। यदि यह कहा जाय कि आज के मानव की लगभग सभी समस्याएँ गीता पर अमल करने से सुलझ सकती हैं, तो कोई गलत नहीं होगा। समय बीतने के साथ–साथ मानव का मौलिक स्वभाव परिवर्तित नहीं होता, गीता का आधार मानव स्वभाव के मौलिक तत्त्वों पर है। इसलिए मानव को सदा ही गीता से प्रेरणा मिलेगी। आधुनिक युग के बहुत से दार्शनिकों, राजनीतिज्ञों और वैज्ञानिकों ने गीता से प्रेरणा पाई है।

आज के युग में जब कि विश्व बन्धुत्व के सारे उपाय बालू की भीत पर खड़े दिखाई देते, गीता का विश्वबन्धुत्व का संदेश संसार को रास्ता दिखा सकता है। गीता मानव के हित में सत्य के अनेक द्वार खोल देती है। गीता तत्वज्ञान का व्यावहारिक रूप प्रस्तुत करती है तथा व्यावहारिक वेदान्त का अनुपम ग्रन्थ है। वास्तव में गीता की ज्ञानगंगा उनके लिए विशेषतः प्रवाहित हुई है, जो मार्ग से भटक गये हैं, प्रभु से बिछुड़ गये हैं और दुःखी एवं अशांत है। गीता का प्रचार, गीता के ज्ञान का प्रसार, गीता के अमृत का वितरण, विशेषतः ऐसे ही लोगों के लिए हैं अर्जुन भटका हुआ था, दुःखी था। अतः इसके लिए गीता की ज्ञानगंगा प्रवाहित की गयी। आज जबकि नैतिक, मानवीय मूल्यों को पुनः प्रतिष्ठित करना है और वह तभी संभव होगा जब हम श्रीमद्भगवद्गीता जैसे सत्साहित्य की पुनः प्रतिष्ठा करेंगे। ऐसे अनुपमग्रंथ की हितशिक्षा प्रत्येक मानव के हृदय में पहुँच कर तमाम मलों को धो डालेगी।

गीता की आज के युग में उपादेयता देखते हुए व्यापक रूप से, इसके अध्ययन–अध्यापन की नितान्त आवश्यकता है। तभी ज्ञानी समाज सृजित

*एम0एस0सी0 (गणित), एम0एड0, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उ0प्र0
**डिपार्टमेन्ट ऑफ जियोग्राफी, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद उ0प्र0

होगा जो वर्तमान युग की चुनौतियों पर खरा उतर सकेगा। श्रीमद्भगवद्गीता हमारी भारतीय संस्कृति की अनमोल थाती है, गीता के अन्दर नारायणकृष्ण के मुख से दिया गया उपदेशामृत तमाम मानवजाति के सुखशांति, कल्याण के लिए है, यानि सर्वजनहिताय, सर्वजनसुखाय है।

गीता मानवमात्र के कल्याण के लिए श्रेष्ठ ग्रन्थ है। मानव जीवन की ऐसी कोई समस्या नहीं है, जिसका समुचित समाधान गीता में न सुझाया गया हो। संसार के घनघोर अंधकार, विपत्ति, संकट, क्षोभ भय और निराशा के मध्य में यह ऐसा प्रकाश पुंज है, जो समस्याओं का साहसपूर्वक डटकर उत्तर देने के लिए, अपने पैरों पर खड़ा होकर जीने के लिए, विषाद की काली चादर उतारकर फेंकने और यथार्थ स्थिति का सामना करने के लिए प्रेरित करता है जो कि वर्तमान युग के नवयुवकों व छात्रों के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

हम अपने नियंत्रण से बाहर की परिस्थितियों में जीवन कैसे जी सकते है तथा अपने भीतर शान्त एवं सम कैसे रह सकते हैं, इसके लिए विचारधारा की आवश्यकता है, सोचने और कर्म करने की विधि की आवश्यकता है। मनुष्य अपनी प्रच्छन्न आन्तरिक शक्ति को पहचानकर, उसका महत्त्व समझकर, स्वयं ही साहसपूर्वक सीधा खड़ा होकर, अपनी दीनता को उतार फेंककर, अपनी शक्ति का सदुपयोग करके ही आत्मसन्तुष्ट एवं कृतार्थ हो सकता है। गीता हमें उच्च आकांक्षा एवं आशा के अनुरूप जीने के लिए अन्तः स्फूर्ति एवं अन्तःप्रेरणा देती है, जीवन की प्रतिष्ठा को पुनर्स्थापित करती है।

वर्तमान युग में जीवन एक संघर्ष है, जन्म से मृत्यु तक आन्तरिक तथा वाह्य परिस्थितियों के साथ जूझने का उपक्रम है। संसार में जीवन संघर्ष का शिक्षण देने के लिए गीता सर्वोत्तम ग्रन्थ है। यदि कोई व्यक्ति नास्तिक है, ईश्वरवादी नहीं है, उसके लिए भी अभय, साहस, प्रसन्नता, निष्काम कर्म आदि की प्रेरणा देने वाला गीता से बढ़कर कोई अन्य ग्रन्थ नहीं है। गीता आत्म–अनुशासन की साधना का उपदेश देकर मनुष्य को न केवल संघर्ष के लिए प्रेरित करती हैं, उसमें उत्साह और प्रसन्नता जगाकर संघर्ष को सहज, सुगम, उत्साहवर्धक और आनन्ददायक भी बना देती है।

गीता में कृष्ण सत्व, रज, तम गुणों के माध्यम से शिक्षा के स्तर की व्याख्या करते है उनके अनुसार जिसमें सत्व गुण प्रधान है वह ज्ञान की सर्वोत्तम कोटि है तथा रजोगुण से मध्यम तथा तम गुण के कारण निम्नकोटि के ज्ञान की महत्ता है। समाज में गतिशीलता और गत्यात्मकता के लिए कृष्ण की वर्णव्यवस्था संस्थात्मक या संरचनात्मक न होकर समाज के समग्र विकास

और उत्थान के लिए है। वर्तमान समय में शैक्षणिक प्रक्रिया निष्प्रभावी प्रतीत होती है। यहाँ उल्लेखनीय है कि गीता में व्यक्तिगत परामर्श की प्रक्रिया का सम्पादन हुआ है जबकि शिक्षण प्रक्रिया में सामूहिक परामर्श की प्रक्रिया की आवश्यकता होती है। जिसमें समस्त छात्रों का एक शिक्षक द्वारा उचित परामर्श प्रदान करना असम्भव तो नहीं किन्तु कठिन अवश्य है। फिर भी गीता में परामर्श की प्रक्रिया के सम्बन्ध में जो विचार मिलते है वे बहुत ही समसमायिक है। इनका शिक्षा में अनुपालन कर शिक्षार्थी एवं शिक्षक को अपने कर्त्तव्यों के प्रति सचेष्ट बनाकर शिक्षर्थियों का बहुमुखी विकास सुनिश्चित कराया जा सकता है।

गीता की आज के युग में उपादेयता देखते हुए व्यापक रूप से, इसके अध्ययन–अध्यापन की नितान्त आवश्यकता है। भाव, भाषा, नैतिकता, व्यावहारिकता, साधना, जीवन में कर्मठता, समाज सेवा भावना तथा आत्मोद्धार के लिए इस सुलभ तथा सुगम ग्रन्थ को आत्मसात करना प्रत्येक ज्ञानी व्यक्ति का कर्त्तव्य है, तभी ज्ञानी समाज सृजित होगा जो वर्तमान युग की चुनौतियों पर खरा उतर सकेगा।

lUnHkZ %

1. सेवा सिंह, "भगवद्गीता", अजंता पब्लिकेशन्स मलकागंज, दिल्ली
2. आर0के0 चौबे, "भारत के प्रमुख शिक्षा दर्शन", अविष्कार पब्लिशर्स डिस्ट्रीव्यूटर्स, जयपुर, राजस्थान
3. स्वामी विवेकानंद, "भगवान श्रीकृष्ण और भगवद् गीता", स्वामी भारस्करेश्वरानंद, श्रीरामकृष्ण आश्रम, धन्तोली, नागपुर–9
4. शिवानंद, "गीता रसामृत", सर्वसेवा संघ प्रकाशन राजघाट, वाराणसी
5. विनोवाजी, "गीता प्रवचन", सर्वोदय सेवा मण्डल
6. स्वामी विवेकानंद, "कर्मयोग", श्रीरामकृष्ण आश्रम, नागपुर
7. श्री अरविंद, "गीता प्रबंध", श्री अरविंद सोसायटी पांडिचेरी–2
8. ओड, डॉ लक्ष्मी लाल, "शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि", राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर
9. लोकमान्य बालगंगाधर तिलक, "गीता रहस्य",पूना तिलक मंदिर, सं0 1955
10. सर्वपल्ली राधाकृष्णन, "भारतीय दर्शन", भाग –1, संस्करण 1998 ;ब्द्ध
11. हिन्दी अनुवाद प्रकाशक भारतीय दर्शन राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली

*****

iwoZ e/;dkyhu nkl izFkk

Mk- lqjthr flag HknkSfj;k*

मेसोपोटानिया, मिस्त्र, यूनान, बेबीलोनिया और रोम आदि विश्व के अधिकांश देशों में दास प्रथा बहुत प्राचीन काल में ही प्रचलित हो गई थी। प्रारंभ में इसका उद्भव मुख्यतः युद्ध से हुआ। विजेता पराजित पक्ष के अनेक लोगों को बंदी बना लेते थे और उनमें से कुछ दास बना लिए जाते थे। जिन्हे विजेता मनचाहे कार्यो में लगाते थे। महाभारत में पराजित को विजेता द्वारा दास बनाए जाने की बात कही गई है। युद्ध में पराजय के अतिरिक्त दास बनाए जाने के कई अन्य कारण एवं परिस्थितियॉ भी थी। इनमें से आर्थिक विपन्नता प्रमुख कारण था। यवनजातक के अनुसार धनु के नवांश में जन्म लेने वाला व्यक्ति दास बनता है। वर्ण व्यवस्था के नियमानुसार दासता का प्रावधान शुद्रों के लिए था। निर्धनता एवं हीन सामाजिक स्थिति के कारण अधिकांश दास निःसंदेह शूद्र जातियों के ही होते थे, किन्तु उच्च जातियों में भी दासता अज्ञात अथवा पूर्णरुपेण अप्रचलित नहीं थी। विभिन्न प्रकार की संकटपूर्ण परिस्थितियों में पड़ने पर किसी भी जाति के लोग दास बनने के लिए विवश हो जाते थे। हम दास प्रथा के इतिहास को समझने के लिए इसे हम निम्नलिखित भागों में बाँट सकते हैः–

iwoZofSnd dky e: nkl izFkk % भारत में दास प्रथा का प्रचलन अत्यंत प्राचीन काल से है। संभवत इसका प्रारंभ प्रागैतिहासिक काल में ही हो गया था। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो के समय (2500ई.पू. से 1500 ई. पू.) में भी दासों का अस्तित्व था, जो तत्कालीन जीवन में पराधीन होकर निम्न स्तर सम्बद्ध थे। मोहनजोदड़ो के बड़े–बड़े भवनों में छोटे कमरों का निर्माण इस बात की और इंगित करता है कि इनमें सेवक या दास रहते होंगे। ऐसे घरेलू सेवकों अथवा दासों के अतिरिक्त केन्द्रीय अधिकारी भी दासों अथवा भृत्यों को सेवा कार्य के लिए नियुक्त करते थे, इसके प्रमाण के लिए मोहनजोदड़ों की खुदाई से प्राप्त एक ही कतार में बने हुए आवासों की दो पंक्तियॉ देखी जा सकती हैं। वैदिक

*सहायक प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान), शास0 महाविद्यालय, बालाजी, मिहोना (भिण्ड), म0 प्र0

साहित्य से दासों के विषय में स्पष्ट और विस्तृत विवरण मिलते है। सर्वप्रथम ऋग्वेद से दासों के विषय में सूचना मिलती है, जो प्रायः आर्यो के प्रतिस्पर्धी के रुप में वर्णित किये गये हैं, वास्तव में अनार्यों को दास, दस्यु या असुर कहा गया है दास कहे जाने वाले ये अनार्य, आर्यों से शारीरिक और सांस्कृतिक दोनों दृष्टियों से भिन्न थे। भाषा और बोलचाल में भी ये आर्यों से पूर्णतः अलग थे।

ऐसा भी संदर्भ मिलता है कि 30 सहस्त्र दास माया से मूर्छित कर दिये गये थे। ऋग्वेद के एक मंत्र से विदित होता है कि आर्यों और अनार्यों का भीषण संघर्ष हुआ था, जिसमें आर्यों ने इन्द्र की स्तुति की थी, ''हमें सब ओर से दस्यु घेरे हुए हैं। वे यज्ञ – कर्म नहीं करते (अकर्मन), न वे किसी वस्तु को मानते है (अमन्तु), उनके व्रत हमसे भिन्न है (अन्यव्रत), वे मनुष्यों जैसा व्यवहार नहीं करते (अमानुष)। हे शत्रुनाशन्, तू उनका वध कर ओर दासों का विनाश कर।'' इस उद्धरण से प्रकट हैं कि आर्यों से अनार्य पूर्णतः अलग थे तथा उनका आर्यों से जमकर संघर्ष हुआ, जिसमें अनार्यों की पराजित और बन्दी अनार्य तत्कालीन समाज में दास के रुप में स्वीकृत किये गये।

mRrjoSfnd dky e nkl iFkk % ऋग्वेदेत्तर साहित्य से भी दास प्रथा पर प्रचुर प्रकाश पड़ता हैं, भेंट में प्रायः दास–दासियों प्रदान करने की तथा उत्तरवैदिक काल तक पूर्ण रुप में विकसित हो चुकी थी। जानवरों के साथ अथवा स्वतन्त्र रुप से दास या दासिया लोगों को उपहार में दी जाती थी। ऐतरेय ब्राहमण के एक उल्लेख से ज्ञात होता है कि एक राजा ने अपना अभिषेक कराने के शुभ अवसर पर पुरोहित को दस हजार दासियॉ और हाथी भेंट में दिये थे। उपनिषदों में भी दास–दासियों के अनेक सन्दर्भ मिलते हैं। उपनिषदकाल में दास–दासियों का प्रचलन समाज में निर्बाध रुप से होने लगा था। आरुणि और उसका पुत्र श्वेतकेतु दोनों जब ज्ञान प्राप्ति के लिए पांचाल नरेश प्रवाहण जाबालि के निकट गए तो यह कहा था कि उनके पास गौ, अश्व, परिवार ओर परिधान के साथ दासी भी थी। छादोग्य उपनिषद् में भी दासी का उल्लेख हुआ है। स्पष्ट है कि दास–दासियो उच्च वर्णों की सेवा में रत रहती थी तथा उन्हें सेवा में रखना उच्चता का प्रतीक माना जाता था। सूत्र साहित्य में भी दासों का उल्लेख हुआ है तथा समाज में उच्च वर्गों की सेवा में सन्नद्व रहना ही उनका प्रधान कर्म माना गया हैं। भारत में दासों के साथ मानवीय और सहदयतापूर्वक व्यवहार किया जाता था। सम्भवतः इसीलिए मेगस्थनीज ने दासों का कोई विवरण नहीं दिया है और लिखा है कि ''भारतवर्ष के विषय में यह ध्यान देने योग्य बात है कि समस्त भारतवासी स्वतन्त्र हैं, उनमें कोई भी दास नहीं हैं।'' स्ट्रेबो ने लिखा है कि ''भारतीयों में

कोई गुलाम (दास) नहीं रखता।'' मेगस्थनीज ने भारत में यूनान की भॉति अमानवीय और कठोरतम दास–प्रथा नहीं देखी थी सम्भवतः इसीलिए उसने इसका कोई वर्णन नहीं किया है।

ck}&dky vkj ijorh dky e nkl iFkk % बौद्ध युग में दासों को सेना, कृषि, उच्चवर्ग के आवास, मध्यम श्रेणी के गृहों ओर व्यापारियों के कार्यों के निमित्त नियुक्त किया जाता था। सेना में सैनिक के रुप में कार्य करने वाले दास 'दसक पुत्त' कहे जाते थे। इनमें ऐसे भी दास थे जो परिवार में उत्पन्न तो हुए किन्तु सैनिक बन गए। कृषि कार्य को सम्पन्न करने के लिए श्रमिकों की आवश्यकता पड़ती थी। इसके लिए भी दास रखे जाते थे। अभिजात्य वर्ग की सेवा में अनेक दास–दासियों सेवारत रहती थी। मध्यम श्रेणी के लोग भी दास–दासियों रखते थे। व्यापारियों के सामानों को लाने ले जाने के लिए दासों को नियुक्त किया जाता था।

दीर्घ निकाय और मज्क्षिम निकाय में दास दासियों का उल्लेख समुचित किया गया है। जातकों में तो दासों के अनेकानेक विवरण मिलते है। दास–दासियों के क्रय–विक्रय विभिन्न प्रकार के सेवा कार्य और भेंट उपहार आदि विभिन्न स्थितियों के सन्दर्भ जातकों में भरे पड़े है, जिनसे स्पष्ट होता है कि उस युग में दास प्रथा समाज में विविध रूप में प्रचलित थी। एक जातक से विदित होता है कि एक ब्राहाण ने एक राजा से अन्य उपहारों के साथ सौ दासियों की भी माँग की थी, जो उसे प्रदान की गई थी। जो दास स्वस्थ और पुष्ट होता था उसका अधिक क्रय–मूल्य चुकाना पड़ता और जो कृषित और दुर्बल उसका कम। इसी प्रकार जो दासी अत्यन्त सुन्दर और रूपवती होती थी उसका भी अधिक क्रय–मूल्य देना पड़ता था। महाभारत में दास–दसियों को भेंट–स्वरूप प्रदान करने के अनेक उदाहरण मिलते है। युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ सम्पन्न करने के उपलक्ष में 88,000 ब्राहाण स्नातकों को तीस–तीस दासियाँ दान में प्रदान की गई थी। कौटिल्य का मत है कि म्लेच्छ दंडनीय नही है अगर वे अपनी सन्तानों को बेचते अथवा प्रदान करते है, किन्तु आर्य दास नहीं बनाये जा सकते। इस कथन से स्पष्ट है कि म्लेच्छ की संतान दास बनाई जा सकती थी चाहे वह बेची जाय या प्रदान की जाये।अशोक ने अपने नवें शिलालेख में दासों के साथ उचित व्यवहार करने के लिए निर्देश दिया है। मनु के अनुसार शुद्रों से दास कर्म कराना चाहिए।

nkl k d i dkj d vk/kkj&rRo % दास अनेक प्रकार के होते थे। कौटिल्य ने ऐसे अनेक प्रकार के दासो का उल्लेख किया है जो अपनी कठिनाईयों और मजबूरियों के कारण दास बन जाते थे –

1. आत्मविक्रयी दास–जो परिस्थिति वश अपने को बेचकर दासता स्वीकार करते थे।
2. उदरदास–जो अपना पेट पालने के लिए अपने को बेच देते थे।
3. प्रक्षोपानुरुप दास–जो अपने आपको बन्धक रखकर धन लेते थे।
4. दण्डप्रणीत दास–जो राज्य अर्थदंड से दंडित होने पर उसे न चुका सकने के कारण दास होते थे।
5. ध्वजाहत दास–जो युद्ध में बंदी होने के कारण दासता स्वीकार करते थे।
6. दाय भाग में प्राप्त दास–जो दास दाय भाग के कारण दूसरे के दास हो जाते थे।
7. गर्भवती दासी से उत्पन्न दास।

nklks d i.fr fd;k tkuokyk O;ogkj % दासों के साथ मानवीय और सहृदयतापूर्वक व्यवहार करने वाले स्वामियों के भी अनेक उदाहरण जातकों से प्राप्त होते हैं। उन दासों के लिए गृहस्वामी भोजन और वस्त्र का उचित प्रबन्ध ा करते थे। कभी–कभी दास–दासी गृह के अन्य सदस्यों की भांति रहते थे तथा तदनुरुप भोजनादि प्राप्त करते थे। कौटिल्य ने कहा है कि गर्भवती (स्वामी द्वारा) दासी को बिना प्रसव की समुचित व्यवस्था के विक्रय करना अथवा बंधक रखना अपराध था; ऐसे अपराधी को प्रथम साहस (250 पण) का दंड दिया जाता था। पतंजलि ने दासियों के प्रति उनसे स्वामियों की लोलुप दृष्टि का अनेक बार उल्लेख किया है। स्वामी और दासी के संयोग के उत्पत्र पुत्र को दासेर कहा जाता था। इस प्रकार का निम्न विवाह, जिसमें उच्च वर्ण की कन्या दास से विवाह करती थी, समाज में निन्दनीय माना जाता था और उच्च वर्ण के माता–पिता चाहकर भी ऐसी पथभ्रष्ट संतान को अभय नहीं दे सकते थे। प्रायः सभी धर्मशास्त्रकार ऐसे विवाह को निषिद्व कहते हैं।

nklks dk dk;Z % मनु का कथन है कि शूद्र को वेतन देकर या न देकर दास–कर्म कराना चाहिए, क्योंकि ब्रह्मा ने ब्राह्मणों की सेवा के लिए ही शूद्रों की सृष्टि की। क्रीत और परिक्रीत दासों में अन्तर था। परिक्रीत दास निश्चित अवधि के लिए, निश्चित द्रव्य के आधार पर, कर्मकर के रुप में रखे जाते थे तथा क्रीत दास सुनिश्चित धन से क्रय किया जाता था, जो धन लौटा देने पर स्वतंत्र हो जाता था। ऐसे दासों के स्वामी आर्य स्वामी कहे जाते थे। जो अपने दासों से विभिन्न प्रकार के कार्य करवाते थे।

कौटिल्य ने विभिन्न कार्य करनेवाले दास और दासी का उल्लेख किया है। उपचारक (सेवक), उपचारिका (सेविका), अध्रसीतिका (अधिया पर खेत देकर मिलनेवाले अन्न से जीविका चलानेवाली), उपचारिका (पंखा आदि

झलनेवाली दासी) आदि विविध कार्यों में संलग्न दास–दासियों का वर्णन उसने किया हैं।

nklRo ls efDr ¼ek{k½ % बौद्व–ग्रन्थों में भी दासता से मुक्त होने के कतिपय उपायों का उल्लेख किया गया है। दीर्घ निकाय के अनुसार दास तीन स्थितियों में मुक्त हो सकता था – (1) यदि वह सन्यास ग्रहण कर ले, (2) स्वामी द्वारा मुक्त कर दिया जाये, (3) शुल्क अदा कर दें। कौटिल्य के अनुसार, स्वामी के गृह से भोगनेवाले दासों को मोक्ष नहीं मिल सकता था। वह कहता है कि जिस व्यक्ति ने धन आदि लेकर दूसरों के पास अपने बंधक रखकर दास बना दिया हो, वह यदि केवल एक बार किसी तरह निकल भागे तो सदा के लिए वह दासता में बंध जायेगा।

lUnHkZ %

1. काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1,पृ. 172 कोसंबी, एन इंट्रोडक्शन टु दि स्टडी ऑफ इंडिया हिस्टरी, पृ. 98
2. महाभारत, 3/256/11;4/33/59; जी.के. राय, इनवालंटरी लेबर इन एंशियंट इंडिया, पृ. 28
3. यवन जातक, 31/1111
4. मनु, 8/3; कात्यायन, 722
5. मार्शल, मोहनजोदड़ों, भा0 1,पृ. 12
6. चानन, स्लेवरी इन ऐंशिएट इंडिया, पृ0 16–18
7. ऋग्वेद, 8.56.3य 7.21.5य 10.99.3 आदि
8. वही, 2.56.3, यो दासं वर्ण मधरं गुहाकः।
9. वही, 4.30.21
10. वही 10–22.8
11. वही, 2.2.6.3
12. ऐतरेय ब्राह्मण, 39.8
13. वृहदारण्यक उपनिषद्, 6.2.7, स होवाच विज्ञायते हास्ति हिरण्यस्यापात्तं गो अश्वानां दासीनां...।
14. मेगस्थनीज का भारत विवरण, पृ0 38
15. स्ट्रबो, 15.1.59. (मेगस्थनीज का भारत विवरण, पृ0 66)
16. दीर्घ निकाय, 1.64 दासदासी पटिग्गहणो पटिविरतो हीति।
17. मज्झिम निकाय, 1.452, चयो नेकानं दासगणानां चयो नेकानं दासीगणानं चयो।
18. नारद0, याज्ञवल्क्य, 2.183
19. महाभाष्य, 1.4.44.
20. वही, 3.1.103, तथा आर्य स्वामी।

*****

gfj;k.kk jkT; d s ikuhir ftys e s lo&f'k{kk vfHk;ku d s fØ;kUo;u dk leh{kkRed v/;;u

v'kkd dekj* ;'k 'kek**

शिक्षा द्वारा ही मनुष्य अपनी विचार शक्ति तथा तर्क शक्ति, समस्या–समाधान, कुशलता और अच्छे मूल्यों तथा रूचियों को विकसित करता है। मनुष्य प्रतिदिन तथा हर क्षण कुछ न कुछ सिखता है। इसका समस्त जीवन ही शिक्षा है। अतः शिक्षा एक निरन्तर तथा गतिशील प्रक्रिया है। इसका अन्तिम उद्वेश्य व्यक्तिगत अस्तित्व को सार्वभौमिक अस्तित्व में लीन करना है।

lof'k{kk vfHk;ku dk vFk % सर्वशिक्षा अभियान से अभिप्राय है कि जो बालक स्कूल नहीं जा रहे है, उन्हें विद्यालय में प्रवेश करवाना। इसका उद्देश्य है कि सब पढ़े–सब बढ़ें।

lof'k{kk vfHk;ku dk 'kHkkjEHk % सर्वशिक्षा अभियान भारत सरकार का एक प्रमुख कार्यक्रम है। जिसकी शुरूआत अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा एक निश्चित समयावधि के तरीके से प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण को प्राप्त करने के लिए किया गया जैसा कि भारत संविधान के 86 वें संशोधन द्वारा निर्देशित किया गया है। जिसके तहत 6–14 साल के बच्चों को मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा के प्रावधान का मौलिक अधिकार बनाया गया है। इस कार्यक्रम का उद्देश्य 2010 तक सन्तोषजनक गुणवता वाली प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण को प्राप्त करना है। सर्वशिक्षा अभियान में 8 मुख्य कार्यक्रम है इसमें ओर आंगनवाडी भी शामिल है इसमें कस्तूरबा गॉधी बालिका विद्यालय योजना की शुरूआत 2004 में हुई जिसमें सारी लड़कियों को प्राथमिक शिक्षा देने का सपना देखा गया, बाद में यह योजना सर्वशिक्षा अभियान में विलय हो गई।

'kks/k dh vko';drk % प्राथमिक शिक्षा के सभी योजनाओं के लक्ष्य कागजों तक ही सीमित रहे है उन पर सही रूप में कार्य नहीं हुआ जिससे कि प्रोग्राम से जो लक्ष्य प्राप्त करने थे वे नहीं हुआ।

*यश कॉलेज ऑफ एजुकेशन, रूड़की, रोहतक, हरियाणा
**डी0सी0एस0 कॉलेज ऑफ एजुकेशन, गोहाना, हरियाणा

'kks/k d s mn~ns'; %

1. पानीपत जिले के ग्रामीण क्षेत्रीय विद्यालयों की आधारभूत स्थिति को जानना।
2. स्कूल में उपलब्ध सुविधाओं की जानकारी प्राप्त करना।
3. स्कूल में मानवीय संसाधनों का अध्ययन करना।

'kks/k dh ifjlhek,a %

1. प्राथमिक विद्यालय में केवल संस्थागत स्थिति का अध्ययन किया गया ।
2. प्रस्तुत अध्ययन केवल हरियाणा राज्य के जिला पानीपत तक सीमित है।
3. समय अभाव के कारण प्रस्तुत शोध कार्य में केवल ग्रामीण क्षेत्रीय प्राथमिक स्कूलों का अध्ययन किया गया।
4. ग्रामीण क्षेत्रीय स्कूलों में केवल सरकारी प्राथमिक विद्यालयों का ही अध्ययन किया गया है।

lEcfU/kr lkfgR; dk v/;;u % रेनू (2010) ने पानीपत जिले के राजकीय प्राथमिक विद्यालयों में मध्याहन भोजन योजना का मूल्यांकन अध्ययन किया। जिसका उद्देश्य राजकीय विद्यालयों के अध्यापकों का पानीपत जिलें में मध्याहन भोजन योजना के प्रति दृष्टिकोण।

सुनीता रानी (2010) ने ग्रामीण क्षेत्रों में प्राथमिक स्तर पर लडकियों द्वारा पढाई छोडने के कारण का अध्ययन किया। अभिभावकों द्वारा लड़कियों को स्कूल भेजने के पक्ष में ना होने के कारण का अध्ययन करना।

'kks/k fof/k ;k ;kstuk % प्रस्तुत अध्ययन के लिए सर्वेक्षण विधि को अपनाया गया है। प्रस्तुत अध्ययन के लिए प्रश्नावली को अपनाया गया है।

izfrn'kZ dk p;u % इस शोध कार्य के लिए 15 राजकीय प्राथमिक विद्यालयों का चुनाव लाटरी विधि अपनाकर किया गया। इसके उपरान्त प्रत्येक स्कूल से दो अध्यापकों का चयन किया गया है। इन विद्यालयों में 30 शिक्षकों को इसी आधार पर चुना गया।

'kks/k fof/k % शोधकर्ता ने अपने शोधकार्य के लिए स्वयं निर्मित प्रश्नावली के माध्यम से पानीपत जिले के 15 स्कूलों को शामिल किया है। इस शोधकार्य के लिए स्वयं निर्मित प्रश्नावली से आकडों को एकत्रित करने से पहले अध्यापकों को प्रश्नावली के बारे में बताया गया है।

'kks/k midj.k % सबसे पहले शोधकर्ता ने स्वंय निर्मित कुछ प्रश्नों की प्रश्नावली का निर्माण किया इस प्रश्नावली में शोधकर्ता ने सर्व शिक्षा

अभियान के अन्तगर्त राजकीय प्राथमिक विद्यालयों को उपलब्ध कराई गई सुविधाओं से सम्बन्धित कई पहलुओं/गतिविधियों से सम्बन्धित प्रश्नों को शामिल किया गया।

गतिविधि 1 : सर्वशिक्षा अभियान के अर्न्तगत विद्यालयों में उपलब्ध कराई गई सुविधाएं।

गतिविधि 2 : सर्वशिक्षा अभियान के अर्न्तगत विद्यार्थियों को प्रदान की गई सुविधाएं।

गतिविधि 3 : सर्वशिक्षा अभियान के अर्न्तगत स्कूल के अन्य पहलुओं से सम्बन्ध में प्रदान की गई सुविधांए।

lkaf[;dh rduhd % सभी प्रश्नों के उतरो की गणना की गई प्रस्तुत शोध में प्रत्येक प्रश्न का साधारण गणना विधि द्वारा तथा प्रतिशत सांख्यिकी तकनीक के आधार पर हल किया गया है ।

fu"d"k % विद्यालय के बारे में प्राथमिक विद्यालयों के स्तर को सुधारने में अभियान के योगदान का अध्ययन करने से पता चलता है कि विद्यालयों के सभी अध्यापक कहते हैं कि सर्वशिक्षा अभियान के तहत सुविधाएँ दी गई है। 90 प्रतिशत अध्यापक इस मत से सहमत है। इसी प्रकार विद्यालय में सर्वशिक्षा अभियान के तहत शौचालयों का निर्माण किया गया है इससे 80 प्रतिशत अध्यापकों ने सहमती दर्शाई है। सर्वशिक्षा अभियान के तहत विद्यालयों में शिक्षण सहायक सामग्री भी उपलब्ध करवाई गई है इस बात से 87 प्रतिशत अध्यापक सहमत है।

Nk=ksa ds ckjs esa % अध्यापकों से स्कूल के छात्र–छात्राओं के बारे में ली गई जानकारी से ज्ञात होता है कि सर्वशिक्षा अभियान के अर्न्तगत इनके लिए कई सुविधाएँ उपलब्ध करवाई गई है। छात्रों के नामांकन में बढोतरी के सम्बन्ध में 60 प्रतिशत अध्यापक सहमत है जबकि 40 प्रतिशत अध्यापक इस सम्बन्ध में असहमत है। इस अभियान के फलस्वरूप विद्यार्थियों के विद्यालय परित्याग दर में वास्तविक कमी आई है। इस सम्बन्ध में 87 प्रतिशत अध्यापक सहमत है। विद्यालयों के अन्य पहलुओं के बारे में

प्राथमिक विद्यालयों के अन्य पहलुओं पर अध्ययन करने से पता चलता है कि 20 प्रतिशत अध्यापक यह मानते हैं कि ग्राम शिक्षा समिति सर्वशिक्षा अभियान द्वारा चलाया जा रहे कार्यक्रमों में सहयोग प्रदान करती है जबकि 80 प्रतिशत अध्यापक कहते हैं कि ग्राम शिक्षा समिति सहयोग नहीं करती है। 93 प्रतिशत अध्यापक यह मानते है कि सत्त मूल्यांकन की ऐसी तकनीक अपनाई गई है जिससे छात्रों में परीक्षा का भय कम हो जबकि 7

प्रतिशत इससे असहमत है। 50 प्रतिशत अध्यापक मानते हैं कि एस.एस.ए. के अर्न्तगत ऐसे कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है जिससे समुदाय एवं विद्यालय में साझेदारी का विकास होता है जबकि 50 प्रतिशत असहमत हैं।

lq>ko %

1. विद्यालयों में सर्वशिक्षा अभियान द्वारा जो भवन निर्माण की ग्रांट दी जाती है उसका उचित प्रयोग किया जाए और अच्छी एवं उत्तम सामग्री का प्रयोग किया जाए।
2. स्कूलों में सर्वशिक्षा अभियान के तहत डयूल डैस्क प्रदान किए जाते हैं वह अच्छी किस्म के होने चाहिए।
3. स्कूलों में सर्वशिक्षा अभियान के तहत भवन मरम्मत एवं स्कूल सुधार ग्रांट दी जाती है उसका स्कूलों में सदुपयोग किया जाए।
4. कक्षा में प्रथम आने वाले बच्चों का एस.एस.ए के तहत जो प्रोत्साहन पुरस्कार प्रदान किया जाता है वह समुदाय की मौजूदगी में प्रदान किया जाए। ताकि किसी प्रकार की अनियमितता न हो।

loZf'k{kk vfHk;ku dk 'kSf{kf.kd vuqiz;ksx %

1. सर्वशिक्षा अभियान से स्कूलों में पर्याप्त भवन और शौचालयों की सुविधाएं प्रदान की गई जिससे छात्रों को लाभ हुआ।
2. इस अभियान के द्वारा बच्चों को सहायक सामग्री खेल का सामान एवं पाठ्य पुस्तकें दी गई।

Hkkfo"; esa 'kks/k ds fy, lq>ko %

1. यह शोध किसी जिले में बड़ा निर्दशन लेकर किया जाए।
2. यह शोध सर्वशिक्षा अभियान के अंतर्गत नामांकन के सुधार में योगदान पर भी किया जा सकता है।

lanHkZ %

1. अग्रवाल,के.सी. (2007). स्टेटिसटिक मैथड कान्सेप्ट एंड एप्लीकेशन'' कम्प्यूटर पब्लिशर प्राईवेट लिमिटेड
2. रेणु (2004). ए स्टडी ऑफ वेस्टेज एंड स्टेगनेशन ऑफ प्राईमरी लेवल इन डिस्ट्रीक्ट करनाल
3. कुमार, ए. (2010). प्राबलम इन डवलपमेंट ऑफप्राईमरी ऐज्यूकेशन इन कुरूक्षेत्र
4. जिला डेजिरटेशन एम–एड डिपार्टमेंट कुरूक्षेत्र विश्वविद्याल, कुरूक्षेत्र

*****

_Xon e: _r dh vo/kkj.kk

Mk0 iHkkr dekj flg*

ऋत् शब्द की निष्पत्ति ऋ गतौ धातु से हुई है; जिसका अर्थ है गतिमान अर्थात् सतत् क्रियाशील रहना। ऋत शब्द प्रकृति का बोधक है और प्राकृतिक शक्तियों यथा सूर्य, चन्द्र, वायु, पृथ्वी, आकाश इत्यादि सर्वथा गतिमान रहती हैं तथा आगे भी गतिमान रहेगी; इसलिए प्रकृति के बोधक ऋत शब्द को गत्यार्थक धातु से निष्पन्न माना गया है। ऋत के अर्थ को लेकर सभी विद्वान एकमत नहीं हैं अपितु भिन्न–भिन्न विचारों का उल्लेख किया है जिसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

डॉ0 राजबली पाण्डेय ने ऋत का अर्थ स्वाभाविक व्यवस्था, भौतिक एवं आध्यात्मिक, निश्चित दैवी नियम बताते हुए ऋत के तीन क्षेत्र निर्धारित किये हैं– 1. विश्वव्यवस्था–जिसके द्वारा ब्रह्माण्ड के सभी पिण्ड अपने क्षेत्र में नियमित रूप से कार्य करते हैं। 2. नैतिक नियम–जिसके अनुसार व्यक्तियों के परस्पर सम्बन्ध का निर्वाह होता है। 3. कर्मकाण्डीय व्यवस्था– जिसके अन्तर्गत धार्मिक क्रियाओं के विधि–निषेध, कार्यपद्धति आदि आते हैं।

डॉ0 सूर्यकान्त ने ऋत को शाश्वत नियम, (Settled order, sacred order) कर्तव्य (Duty) औचित्य (Propriety) 'सत्य' (Truth) तथा 'सत्कृत्य, यज्ञ, (Holy work, sacrifice) इत्यादि अर्थों में स्वीकार किया है।

वी0एस0 घाटे ने ऋत को शाश्वत नियम, 'दैविक नियम' एवं 'नैतिक नियम' के रूप में प्रस्तुत किया है। उनका कहना है कि ऋग्वेद में 'ऋत' शब्द तीन विचारों को प्रदर्शित करता है। जो एक दूसरे पर आश्रित है या एक विचारधारा साम्राज्य की अन्तरता के फलस्वरूप तीन पहलुओं के अन्तर्गत आती है। उनके अनुसार 'ऋत' शब्द ऋग्वेद में प्रथम स्तर पर 'शाश्वत नियम' को प्रदर्शित करता है। इस रूप में ऋत सूर्योदय, सूर्यास्त तथा उषा का आगमन आदि समस्त प्राकृतिक दृश्यों का नियामक है। द्वितीय स्तर पर यह

*असिस्टेण्ट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चुनार, मीरजापुर, उ0प्र0

'देवपूजा' अथवा 'यज्ञ की नियमितता का सूचक है। इस रूप में ऋत देवों का आह्वान, उन्हें हविर्दान तथा 'यज्ञ' में देवताओं के आगमन आदि अनेक याज्ञिक क्रियाओं का नियन्ता है। तृतीय स्तर पर 'ऋत' वह नैतिक विधान है, जिसका पालन प्रत्येक सदाचारी के लिए आवश्यक है।

निरूक्तकार आचार्य यास्क ने ऋत को ऋ गतौ धातु से निष्पन्न बताते हुए इसके तीन अर्थ किये हैं– 1. सत्य 2. उदक 3. यज्ञ। इसी प्रकार ऋत को विभिन्न क्षेत्रों से सम्बद्ध करते हुए सेंटपीट्सवर्ग कोश में बताया गया है कि ऋत मानव जीवन के विविध बिन्दुओं से सम्बद्ध आदेश अथवा नियम (Order) है। यथा– प्राकृतिक आदेश अथवा व्यवस्था, यज्ञीय क्रियाकलाप से सम्बद्ध नियम तथा चारित्रिक नियम। ये समस्त नियम ऋत के रूप में ही परिगणित हैं। ऋत के उपर्युक्त अर्थों की ही भाँति मोनियर विलियम ने भी इसके तीन अर्थ बताये हैं– 1. यज्ञ सम्बन्धी नियम, 2. दैवी नियम, 3. दैवी सत्य।

डा0 बी0बी0 चौबे ने ऋत का अर्थ उपर्युक्त विद्वानों के मतों से हटकर ऋत को प्रकृति के अर्थ में स्वीकार किया है। उनका मन्तव्य है कि उपर्युक्त विद्वानों ने ऋत का जो अर्थ सत्य, उदक, यज्ञ तथा नियम इत्यादि माना है वह सब प्रकृति का ही विकसित स्वरूप है।

भारतीय भाष्यकार आचार्य सायण ने ऋग्वेद में ऋत का सत्य यज्ञ, उदक, आचार्य वेंकटमाधव ने भी ऋत को सत्य, यज्ञ उदक, आदित्य, तेज और स्तोत्र के रूप में स्वीकार किया है।

भाष्यकार आचार्य स्कन्दस्वामी, उदगीथ एवं माधव ने भी ऋत को यज्ञ, सत्य और जल अर्थ में ग्रहण किया है। इसके अतिरिक्त स्कन्दस्वामी ने 'ऋत' को आदित्य के रूप में भी स्वीकार किया है।

एच0एच0 विल्सन ने ऋग्वेद में ऋत को Sacrifie (यज्ञ) True (सत्य), Milk of rain, water (जल), Sun (सूर्य) Mighty (बल) आदि अर्थों में प्रयुक्त माना है। भाष्यकार ग्रिफिथ ऋत को मुख्यरूप से Eternal Law (शाश्वत नियम) के रूप में स्वीकार किया है।

यद्यपि एतदतिरिक्त Sacrifice (यज्ञ) True (सत्य), Light (प्रकाश) एवं Worship (पूजा) इत्यादि अर्थों को भी मानते हैं।

भारतीय भाष्यकार आचार्य दयानन्द सरस्वती एवं व्याख्याकार अरविन्द ऋत को मुख्य रूप से सत्य अर्थ में स्वीकार करते हैं। यद्यपि इसके अतिरिक्त आचार्य दयानन्द ने ऋत को सत्य आचरण, यथार्थ, जल, यज्ञ, वेद वचन एवं वेद धर्म इत्यादि अर्थों में भी प्रयुक्त माना है।

जब हम ऋग्वेद की ऋचाओं का अध्ययन करते हैं तो देखते हैं कि ऋग्वेद में ऋत का देवों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसीलिए ऋत देवों के विशेषण के रूप में बहुतायत रूप से प्रयुक्त मिलता है उदाहरणार्थ अग्नि के लिए ऋतावानं (सत्यकारणमय) मित्र वरुणौ के लिए ऋतावाना (सत्य से युक्त), इन्द्र के लिए 'ऋतेजा' (यज्ञ के लिए प्रादुर्भूत), उषा के लिए 'ऋतयुज्' (स्तोत्रों से युक्त), सोम के लिए 'ऋतद्युम्न' (सत्यकान्तियुक्त) विशेषण का प्रयोग हुआ है। स्वरुप बोध की दृष्टि से ऋत ऋग्वेद में जिन–जिन स्थलों पर प्रयुक्त हुआ है वहां पर ऋत किसी एक स्वरूप अथवा अर्थ को घोतित न करके अपितु प्रसंगानुकूल भिन्न–भिन्न स्वरूपों एवं अर्थों को प्रतिध्वनित करता है। जिसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है–

ऋग्वैदिक ऋचाओं में ऋत उदक के रूप में सर्वाधिक रूप से दृष्टिगत होता है यथा–जब ऋषि पवमाम सोम की स्तुति करते हुए कहता है कि ये श्रेष्ठ और स्वच्छ सोमरस ऋत की धारा के साथ याजकों के गृहों में गौ के दूध के साथ अन्न देते हैं। तो यहां पर ऋत जल के अर्थ में प्रयुक्त है। सोमरस एक पेय पदार्थ है जो अमृत के समान लाभकारी है जिसका पान देवतागण करते हैं। इसलिए सोमरस की तुलना जल के रूप में की गयी है। ऋत का यही अर्थ वहां भी दिखलाई पड़ता है, जब यह कहा जाता है कि भूरे रंग के ये शीघ्रगामी सोमरस ऋत की धारा (ऋतस्य धारया) के साथ उत्पन्न किये जाते हैं तथा बल बढ़ाने वाले जल के साथ मिलने वाले सोमरस की ऋत की धारा के (ऋतस्य धारया) साथ स्तोत्रों के द्वारा अपनी बुद्धि के अनुसार ज्ञानी स्तुति गाते हैं। इन स्थलों पर आचार्य सायण, वेंकटमाधव एवं सातवलेकर भी ऋत का अर्थ जल (उक्त) ही स्वीकार करते हैं।

ऋग्वेद में ऋत यज्ञ के रूप में भी प्रयुक्त मिलता है यथा– जब ऋषि कहता है कि हे अग्नि! तू प्रचण्ड तेज से राक्षसों को दग्ध कर। तू ऋत का रक्षक होकर दीप्तिमान होओ। तो यहां पर ऋत यज्ञ के रूप में ही परिलक्षित होता है। अग्नि देवता यज्ञ के ही प्रमुख देवता हैं और यज्ञ को सम्पन्न करना उनका प्रमुख कार्य है। इसीलिए उन्हें यज्ञों का पुरोहित कहा जाता है। अतएव प्रस्तुत मन्त्र में कहा गया है कि यज्ञ की रक्षा करके तुम प्रज्वलित होओ। इसी प्रकार भाष्यकार सायण एवं सातवलेकर भी यहां पर ऋत का अर्थ यज्ञ ही किया है।

पवमान सोम की स्तुति में प्रयुक्त ऋचाओं भी ऋत अपने इसी स्वरूप को प्रदर्शित करता है यथा– सोम तुम बहुत मधुर हो, ऋत स्थान में बैठने के

लिए इन्द्र और मारूतों के लिए क्षरित होओ। एक अन्य मन्त्र में कहा गया है कि जब वेगशाली सोम ऋत के हिरण्यमय स्थान पर बैठते हैं तब स्तोत्र शून्यों के यज्ञ में नहीं जाते और ऋत के ओष्ठप्रान्त अभिषव वाले सोम की किरणें ऊपर उठती हैं। अन्य स्थलों पर भी ऋत का यह स्वरूप परिलक्षित होता है।

ऋग्वेद में ऋत अन्न के रूप में भी परिलक्षित होता है यथा–क्षिप्रकारी और देवकामी सोम दशापिब में जाकर और राक्षसों को नष्टकर हमें प्रचुर ऋत (अन्न) देते हैं। तो यहां पर ऋत अन्न के रूप में प्रयुक्त है। ऋत का यही अर्थ आचार्य सायण सातवलेकर को भी अभीष्ट है।

ऋग्वेद में जब ऋत का आदित्य, इन्द्र, मरूत इत्यादि देवों के साथ आह्वाहन् किया जाता है तथा यह प्रार्थना की जाती है कि ये सभी हमारी रक्षा करें। तो वहाँ पर ऋत एक देवता के रूप में परिलक्षित होता है। क्योंकि देवतागण अपने सभी स्त्रोताओं की रक्षा करते हैं, इसीलिए स्त्रोतागण आत्मरक्षणार्थ देवों का आह्वाहन् अर्थात् स्तुति करते हैं। आचार्य सायण एवं सातवलेकर भी प्रस्तुत स्थल पर ऋत का यही स्वरूप चतुर्थ मण्डल में भी स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है। वहाँ पर ऋत देव को अनेक शक्तियों से परिपूर्ण बताया गया है यथा– ऋत देव के पास बहुत जल है। ऋतदेव की स्तुति पाप को नष्ट करती है। ऋतदेव का बोधयोग्य तथा दीप्तिमान स्तुतिवाक्य मनुष्यों के बधिर कर्ण में भी प्रवेश पाता है।

ऋग्वेद में ऋत जब अग्नि देवता के विशेषण के रूप में प्रयुक्त किया जाता है तो वहाँ पर ऋत सत्य के अर्थ में ही प्रतीत होता है उदाहरणार्थ–जो, अमर, ऋत से युक्त (सत्यवान) देवों को बुलाने वाला और यज्ञों का सम्पादन करने वाला है, ऐसे इस अग्नि के लिए हवि कैसे प्रदान करें। एक दूसरे मन्त्र में कहा गया है कि जो अग्नि यज्ञों में अत्यन्त सुखकारी, ऋतदशी (सत्यदर्शी) और देवों को बुलाने वाला है, उस अग्नि का हे लोगों! स्तोत्रों से सत्कार करो।

ऋचाओं में जब ऋतस्य पंथा (ऋत के मार्मका) ऋतं वदामि (ऋत बोलता हूँ), एवं ऋतं वदेम (ऋत बोलना चाहिए) इत्यादि वाक्यों का प्रयोग किया जाता है तो वहाँ पर भी ऋत सत्य के अर्थ को ही द्योतित करता है। किन्तु ऋत को सत्य का पर्यायवाची नहीं कहा जा सकता है क्योंकि ऋत और सत्य दोनों मन्त्रों में एक साथ प्रयुक्त हुए हैं तथा ऋत निखिल ब्रह्माण्ड का वह अंश है जो कि सर्वदा परिवर्तनशील के रूप में दृष्टिगोचर होता है जबकि सत्य ब्रह्मण्ड का अपरिवर्तनशील शाश्वत एवं चिरस्थायी अंश है। ए0वी0 कीथ का मन्तव्य है कि सतय का समष्टिगतरूप ही 'ऋत' है और ऋत का

विकीर्णतः व्यवहारपरक रूप ही सत्य है। ऋत के सतय स्वरूप को ऋग्वेद के अन्य स्थलों पर भी देखा जा सकता है।

ऋग्वेद में ऋत स्तोत्र के रूप में भी प्रयुक्त है उदाहरणार्थ–ऋषि जब ऋत का प्रयोग होता के विशेषण के रूप में प्रयुक्त करते हुए कहता है कि ऋतकर्ता (ऋतंशंसन्त), यज्ञरक्षक, और दीप्तिशाली होता लोग ''अग्नि ही सत्य है'' ऐसा कहते हैं, तो यहाँ पर ऋत स्तोत्र अर्थात् स्तुति के रूप में प्रयुक्त है। क्योंकि होता का प्रमुख कार्य यह है कि वह स्तुति के द्वारा देवों का आह्वान करता है। इसलिए जब ऋषि होता को ऋत करने वाला कहता है तो यहाँ पर ऋत करने से तात्पर्य स्तोत्र करने से है। एक अन्य मन्त्र में कहा गया है कि द्यावापृथिवी के उद्देश्य से चारों दिशाओं में प्रकाश के लिए मैंने अत्युत्तम ऋत (अर्थात सर्वश्रेष्ठ स्तुति) किया है, तो यहाँ पर भी ऋत का प्रयोग स्पष्टतः स्तोत्र के रूप में परिलक्षित होता है। इन स्थलों पर आचार्य सायण ने भी ऋत का अर्थ स्तोत्र किया है। इसी प्रकार अन्य स्थलों पर भी ऋत का प्रयोग स्तोत्र के रूप में दृष्टिगत होता है।

ऋग्वेद के चतुर्थ मण्डल में मन्त्रद्रष्टा ऋषि अग्नि की स्तुति करते हुए जब यह कहता है कि हे अग्नि! हम तुम्हारी परिचर्या करते हैं, जिससे हम शोभन कर्म वाले होते हैं। तमोनिवारिका उषा सम्पूर्ण ऋत को धारण करती हैं तो प्रस्तुत स्थल पर ऋत तेज के रूप में ही प्रयुक्त है। क्योंकि उषा की किरणों का स्वभाव ही है तेज को धारण करना। अपने इसी तेज के बल से उषा तिमिर का नाश करके सूर्य के आगमन का मार्ग प्रशस्त करती हैं। अतएव यहाँ पर ऋत को धारण करने से तात्पर्य तेज को धारण करने से है। भाष्यकार सायण वेंकटमाधव एवं ग्रिफिथ ने भी ऋत का अर्थ यहाँ पर तेज ही किया है।

ऋत के स्वरूप का विवेचनोपरान्त यह देखते हैं कि ऋग्वेद में 'ऋत' उदक, यज्ञ, सत्य, अन्न, स्तोत्र, देवता एवं तेज के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

fu"d"kZ% यह कह सकते हैं कि ऋत को 'धार्मिक', 'सामाजिक' और 'प्राकृतिक' नियम के रूप में मानना अधिक समीचीन होगा। इन तीनों नियमों के अन्तर्गत ही ऋत के सभी स्वरूप समाहित हैं।

lUnHkZ %

1. हिन्दू धर्मकोश, पृ0– 137
2. डॉ0 सूर्यकान्त, ए प्रैक्टिकल वैदिक डिक्शनरी, पृ0 22
3. घाटे, लेक्चर्स आन ऋग्वेद, पृ0 144

4. सत्यं वा यज्ञं वा निरूक्त 4.19
5. ऋतम् इति उदकानाम् प्रत्यमृते भवति निरूक्त 2.25
6. से0पी0 कोश।
7. ऋत पर मोनियर विलियम डिक्शनरी ऋत शब्द का अर्थ।
8. डॉ0 ब्रजबिहारी चौबे, ट्रीटमेन्ट आफ दिन नेचर इन द ऋग्वेद, पृ0 13–14
9. ऋतेन सतयेवचनेन यजमानानुग्रहकारिणा ऋ0 1.23.5 परसायण भाष्य।
10. ऋताय अस्महाज्ञार्थंइष्यतिहिप्रेरयतिखलु ऋ 1.34.10 पर सायण भाष्य
11. ऋतस्य उदकस्य ऋ0 1.75.3 पर सायण भाष्य
12. ऋतेन सत्येन ऋ0 1.23.5 पर वे0 मा0 भाष्य
13. ऋतस्य यज्ञस्य ऋ0 1.1.8 पर वे0 मा0 भाष्य
14. ऋतेन उदकेन तेसा वा ऋ0 5.1.7 पर वे0 मा0 भाष्य
15. ऋतस्य आदित्यस्य ऋ0 1.123.9 पर वे0 मा0 भाष्य
16. उदकेन तेजसा वा ऋ0 5.1.7 पर वे0 मा0 भाष्य
17. स्तोत्रं ऋ0 1.185.10 पर वे0 मा0 भाष्य
18. ऋताय यज्ञं प्रति गमनाय। ऋ0 1.34.10 पर स्कन्दस्वामी भाष्य ऋताय यज्ञार्थ ऋ0 10.8.4 पर (उद्गीय भाष्य)। ऋतात् यज्ञात् । ऋ0 1.36.11 पर माधव भाष्य।
19. ऋतावा सत्यवान यज्ञवान वा ऋ0 1.77.1 पर स्कन्दस्वामीकृत भाष्य। ऋतं सत्यं ऋ0 10.34.12 पर उद्गीथ कृत भाष्य। ऋतावा सत्यवान ऋ0 1.77 पर माधव कृत भाष्य।
20. ऋतेन उदकेन यज्ञेन यज्ञेन वा ऋ0 1.23 पर स्कन्दस्वामी भाष्य ऋतस्य उदकस्य ऋ0 10.43.9 पर उद्गीथ भाष्य। ऋतं उदकं ऋ0 1.65 रमाधव
21. ऋतस्य आदित्यस्य ऋ0 179.3 पर स्कन्दस्वामी भाष्य।
22. ऋ0 1.34.10 पर विल्सन का अंग्रेजी अनुवाद।
23. ऋ0 1.23.5 पर विल्सन का अंग्रेजी अनुवाद।
24. ऋ0 1.65.4, 79.3 पर विल्सन का अंग्रेजी अनुवाद।
25. ऋ0 1.23.9 पर विल्सन का अंग्रेजी अनुवाद।
26. ऋ0 3.2.13 पर विल्सन का अंग्रेजी अनुवाद।
27. ऋ0 1.68.2 पर ग्रिफिथ भाष्य
28. ऋ0 1.34.10 पर ग्रिफिथ भाष्य
29. ऋ0 1.105.5 पर ग्रिफिथ भाष्य
30. ऋ0 4.2.19 पर ग्रिफिथ भाष्य
31. ऋ0 7.39.1 पर ग्रिफिथ भाष्य
32. ऋतं सत्यं चिनोति ऋ0 4.3.4, ऋते सत्ये ऋ0 6.3.3., ऋतात् सत्यात् ऋ0 3. 6.10, ऋतेन सत्येन ऋ0 3.54.3, ऋता सत्या .... ऋ0 2.24.8 पर स्वामी दयानन्द सरस्वती का भाष्य।
33. वेद रहस्य 1.1.8., 36.11, 19,65.2, 67.4 पर अनुवाद पृ0 387–89

34. ऋतेन सतयाचरणेन ....। ऋ0 1.36.19 पर दयानन्द भाष्य।
35. ऋतं यथार्थ ..... ऋ0 5.57.8 पर दयानन्द भाष्य।
36. ऋतधीतिभिः जलधारकैर्गुणैः ..... ऋ0 6.39.2 पर दयानन्द भाष्य।
37. ऋतं यज्ञ सत्यव्यवहारं जलादि च। ऋ0 1.188.2 पर दयानन्द भाष्य।
38. ऋतेन वेदवचनेन ..... । ऋ0 10.12.1 पर दयानन्द भाष्य।
39. ऋतेन वेद धर्मेण ..... । ऋ0 10.12.2 पर दयानन्द भाष्य।
40. ऋ0 3.2.13
41. ऋ0 5.65.2, 1.136.4,उ 151.4,8
42. ऋ0 7.20.6
43. ऋ0 4.51.5
44. ऋ0 9.113.4
45. एते धर्मान्यार्या शुका ऋतस्य धारया। वाजं गोमन्तमक्षरन्।। ऋ0 9.63.14
46. ऋ0 9.63.4
47. ऋ0 9.63.21
48. गोभिर्युक्तं वाजमन्नं ऋतस्योदकस्य धारया अक्षरन् क्षरन्ति।। (ऋ0 9.63.14), इमे सोमा ऋतस्योदकस्य धारया असग्रमन (9.63.4), ऋतस्योदकस्य धारया समस्वरन्प्रेरयन्ति। ऋ0 9.63.21 पर सायण भाष्य।
49. ऋ0 9.63.14, 4,21 पर वेंकटमाधवभाष्य।
50. वही सातवलेकर भाष्य।
51. अदाभ्येनशोचियाग्नेरक्षस्त्वंदह। गोपाऋतस्यदीदिहि।। ऋ0 10.118.7
52. देवानां यज्ञेषु होतृनामऋत्विगग्निदेव तथा च श्रूयते अग्निर्वै देवानां होता। ऐ0ब्रा0 3.14
53. किंच ऋतस्ययज्ञस्यगोपा गोपायितासन् दीदिहि दीप्यस्व ।।ऋ0 10।। 18.7 पर सायण भाष्य
54. ऋ0 10.118.7 पर सातवलेकर भाष्य।
55. ऋ0 9.64.22
56. ऋ0 9.64.20
57. ऋ0 9.73.1
58. ऋ0 ऋ0 4.51.8, 9.69.3, 64.11, 66.12, 72.6, 7.3.8, 10.13.3, 100.10, 110.2
59. परिसोमऋतंबृहदाशुः पवित्रे अर्षति विधून रक्षांसि देवयुः ।। ऋ0 9.56.1
60. बृह्ममहंऋतमन्नं पर्यषति परिगमयति .....। ऋ0 9.56.1 पर सायणभाष्य।
61. ऋ0 9.56.1 पर सातवलेकर भाष्य।
62. अदितिर्द्यावापृथिवी ऋतं महदिन्द्राविष्णू मरूतः स्वर्बृहत्।
देवाँ आदित्याँ असे हवामहे वसून् रूद्रान्त्सवितारं सुदंससम् ।। ऋ0 10.66.4
63. वही सायण भाष्य
64. वही सातवलेकर भाष्य
65. ऋतस्यहिशुरूधः सन्तिपूर्वीऋतस्यधीतिर्वृजिनानिहन्ति।
ऋतस्यश्लोकोबधिरातलर्दकर्णाबुधानः शुचमानआयोः। ऋ0 4.2.3.8

66. यो मर्त्येष्वमृत ऋतावात होता यजिष्ठ इत् कृणोतिदेवाम्। ऋ0 1.77
67. यो अध्वरेषु शतमं ऋतावा होता तम नमोभिरा कृणुध्वम। ऋ0 1.77.2
68. ऋ0 9.124.5
69. ऋ0 4.2.14
70. ऋ0 3.55.3
71. ऋ0 5.51.2,9.113.4, 10.190.1
72. रिलीजन एण्ड फिलासफी आफ द वेद एण्ड उपनिषद, पृ0 473
73. ऋ0 9.66.24, 73.6, 10.34.12, 4.40.5, 3.54.12
74. ऋतंशसन्ततमित्आहुरनुव्रतंव्रतदीध्यानाः।ऋ03.7.8.।
75. ऋ01.185.10
76. ऋतंस्तोबंशसन्तोव्रतयाः.....ऋ03.7.8. ।ऋतंस्तोत्रंप्रथमंमुख्यनाभैवत..... ।ऋ01. 185.10 पर सायण भाब्य
77. ऋ04.234, 5.15.2, 5.59.।
78. अकर्मतेस्वपसोअभूमऋतमवस्रन्नुषसोविभातीः ऋ0 4.2.19
79. विभातीः व्यच्छन्त्यउषसः ऋतंतेजोवस्रन् आच्छादयन्ति ... । ऋ0 4.2.19 पर सायण भाष्य
80 वही वेकटमाधव भाष्य।
81. वही ग्रिफिथभाष्य।

*****

Hke.Myhdj.k vkj f’k{kd f’k{kk dh of’od pukfr;k

lrk"k dekj flg*
Mk0 food flg**

सूचना विस्फोट के युग ने समस्त विश्व को ग्लोबल ग्राम का रूप देकर सूचनाओं के विभिन्न आधुनिक उपकरणों के माध्यमों से सूचना आदान–प्रदान करके शिक्षक–शिक्षा में गुणवत्ता स्तर के परिशोध व विकास में एक ही नही है वरन् छात्रों के ज्ञान स्तर को भी बढ़ाया है और कक्षागत परिस्थितियों में विभिन्न प्रकार की प्रविधियों को समन्वित रूप से प्रयोग करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

Hke.Myhdj.k dh vo/kkj.kk %

भूमण्डलीकरण वास्तव में व्यापार के क्षेत्र में चल रही एक प्रक्रिया है, जिसमें पूरे विश्व को एक भविष्यवादी संस्कृति में ढालने का एवं एक भविष्यवादी गांव बना देने का अभियान कहा जा सकता है। जॉन–डेलर्स के अनुसार 'भूमण्डलीकरण वास्तव में वस्तुओं सेवाओं और पूँजी के मुक्त अदान–प्रदान का समन्वय है।

Hke.Myhdj.k d QyLo:i f’k{kk dh of’od pukfr;k %

यूनेस्को 1996 में जॉन डेलर्स की अध्यक्षता में गठित विश्वस्तरीय आयोग ने वैश्विक चुनौतियों से निपटने हेतु प्रत्येक राष्ट्र को अपने संसाधनों के आधार पर अपनी कार्य संस्कृति विकसित करके शिक्षातन्त्र को मजबूत बनाने पर बल दिया और शिक्षा के चार स्तम्भ बताये।

* जानने के लिए शिक्षा
* मिलकर रहने के लिए शिक्षा
* कार्य करने के लिए शिक्षा
* बनने के लिए शिक्षा

*विभागाध्यक्ष–शिक्षाशास्त्र, राणा प्रताप पी0जी0 कालेज, सुलतानपुर, उ0प्र0
**प्रवक्ता–वाणिज्य, राणा प्रताप पी0जी0 कालेज, सुलतानपुर, उ0प्र0

अतः यह आवश्यक हो जाता है कि प्रत्येक राष्ट्र को अपनी शैक्षिक व्यवस्था को सुदृढ़ बनाकर चुनौतयों का सामना करने योग्य बनाना होगा।

डेलर्स ने स्पष्ट किया कि जिस तेजी से विश्व बदल रहा है, शिक्षक को अपने विषय विशेष के ज्ञान, सम्प्रेषण एवं निर्देशन से जुड़ी तकनीकी कुशलताओं के प्रति सजग रहना उसकी व्यावसायिक जिम्मेदारी ही नहीं बल्कि नये विश्व के प्रति उसकी जबावदेही भी होगी। शिक्षक द्वारा पढ़ाये जाने वाले विषय की गहराई विभिन्न आयामों की पहचान व पकड़ और शिक्षण की कुशलता दोनों के बीच संतुलन बनाये रखने का कार्य भी वैश्विक दौर के शिक्षक को स्वयं निभाना होगा।

वैश्वीकरण व उदारीकरण की प्रकृति के परिणामस्वरूप शिक्षा–शिक्षण के क्षेत्र में आशातीत विस्तार एवं विकास ही नही हो रहा बल्कि नये–नये सम्प्रेषण व ज्ञानार्जन के साधन बाजार में उपलब्ध हुये हैं जिसके चलते शिक्षकों की पाठ्यक्रम निस्तारण सम्बन्धी कठिनाईयों ने भी विस्तार किया है। आज ज्ञान प्रसार से अधिक ध्यान योजना प्रसार पर दिया जाने लगा है। शिक्षा के राजनीतिकरण एवं बाजारीकरण से नई–नई समस्याएं विधियां एचं चुनौतियां आ रही है।

आज हमें जागरूक होना होगा उदारीकरण, निजीकरण और भूमण्डलीकरण का सामना करने हेतु अपनी नई संस्कृति विकसित करनी होगी अन्यथा शिक्षा जगत पर दूरगामी दुष्परिणाम दिखाई देगें अतः शैक्षिक प्रणाली में बदलाव, पर्यावरण एवं मूल्य आधारित शिक्षा के पाठ्यक्रम को शामिल करने के साथ–साथ प्रौद्योगिकीय पाठ्यक्रम को भी समान स्थान देने की आवश्यकता है।

Hke.Myhdj.k e f’k{kdk dk l’kDr gkuk vfuok;l vko’;drk %

वैश्विक चुनौतियों के परिणाम से शिक्षा के सभी आयामों में अभूतपूर्व परिवर्तन आया है, जिसके चलते शिक्षा में नई–नई विषयवस्तु का समावेश, अध्यापन कला में परिमार्जन, नवाचारों के अनुसार अनुकूलन करने, अध्ययन विधियों को बदलने, शैक्षिक टेक्नोलॉजी आधारित अध्यापन व प्रशिक्षण के क्रियान्वयन, दूरवर्ती शिक्षा को अपनाने, विश्व स्तर की शिक्षा के अदान–प्रदान, के अवसर आदि प्रसंगों का औचित्य प्रस्तुत हो गया है। इन सभी प्रसंगों द्वारा उत्पन्न चुनौतियों का सामना करने हेतु प्रत्येक स्तर (प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च) की शिक्षा में सेवारत् शिक्षकों की व्यावसायिक सुदक्षता बढ़ाये जाने की आवश्यकता ही नही बल्कि शिक्षकों का सशक्तिकरण प्रासंगिक हो गया है।

वैश्विक दौर में ज्ञान आधारित समाज के साकार होने की प्रक्रिया तेजी से आरम्भ हुयी है और सूचना प्रौद्योगिकी के विकास द्वारा वैश्विक चुनौतियों के नये–नये द्वार खोले जा रहे है। परिणामस्वरूप अध्यापन की नई–नई कुशलताओं की अतिरिक्त मांगे उत्पन्न हुयी है। अतः अध्यापक प्रशिक्षण में निम्न दो कुशलताएं होनी आवश्यक प्रतीत होती है–

* नई कुशलताओं को समझने की आवश्यकता।
* प्रौद्योगिकी सूचनाओं का प्रासांगिक ज्ञान में रूपान्तरण करने की कुशलता

अतः अध्यापकों को भूमण्डलीकरण की मांग के अनुसार नई कुशलताओं एवं आवश्यकताओं के मध्य सामाजस्य स्थापित करना होगा और शिक्षकों को पुनः प्रशिक्षित करने की आवश्यकता होगी।

शिक्षकों को नई पीढ़ी के नवनिर्माण हेतु यह आवश्यक है कि उसे अपने विषय का एकाधिकार हो वह छात्रों की सभी बौद्धिक जिज्ञासाओं की पूर्ति करें, शिक्षण में नई तकनीकी–दूरदर्शन, विडियों, सॉफ्टवेयर, कम्प्यूटर, इन्टरनेट, सैटेलाइट, ई–मेल, फैक्स, ई–मोबाइल आदि सूचना माध्यमों से अपने आप की परिपूर्ण रखते हुये कक्ष–शिक्षण में इनका बखूबी प्रयोग करें।

शिक्षक के सशक्तीकरण का मुद्दा सामाजिक महत्व का है क्योंकि शिक्षा के बहुचर्चित प्रतिमान परिवर्तन के तहत अर्थात शिक्षक केन्द्रित शिक्षण के स्थान पर अधिगमकर्ता केन्द्रित शिक्षण व्यवस्था को स्वीकार करने के कारण यह और प्रांसगिक हो गया है। इसमें शिक्षण की बदली हुयी भूमिका को सुदृढ़ बनाने पर जोर होगा, जिसमें वह एक सृजनात्मक, कल्पनाशील, गतिशील एवं सामर्थ्यवान शैक्षिक व्यवस्था का रचनाकार होगा, जिसके परिणामस्वरूप आत्म–अनुदेशन, स्वशिक्षण, स्वमूल्यांकन तथा स्वप्रभावीकरण की अभिनव कार्यप्रणाली विकसित हो सकेगी।

lUnHkZ %

1. प्राथमिक शिक्षक, अक्टूबर–दिसम्बर 2005, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली
2. शिक्षक सशक्तीकरण, 26, 27 मार्च 2006, भारतीय शिक्षा शोध संस्थान, लखनऊ
3. पाण्डेय के.पी., शिक्षक सशक्तीकरण : अपेक्षित प्रवीणतायें एवं युक्तियाँ अन्वेषिका पृ0 83
4. उच्च शिक्षा–गुणवत्ता सुधार, द्विमासिक पत्रिका 'रचना', अंक 32, सितम्बर–अक्टूबर, 2001

*****

tuek/;e vkj lkLdfrd igpku

f'k[kk 'kDyk*

'kks/k lkj % सभ्यता और संस्कृति के विकास के साथ ही शिक्षित और सुसंस्कृत जनसमुदाय ने संचार–कला के आधार पर समय की माँग को ध्यान में रखते हुए अपना संदेश दूसरों तक पहुँचाने के अनेक साधनों एवं माध्यमों को विकसित कर लिया है। इन साधनों एवं माध्यमों को 'जनमाध्यम' कहा जाता है। प्राचीनकाल से ही जनमाध्यम संस्कृतियों के विकास और विस्तार में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रहे हैं। किन्तु औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप जिस प्रकार जनमाध्यमों का विकास हुआ वह अवश्य हमारी सांस्कृतिक पहचान और मूल्य व्यवस्था के लिए चुनौतीपूर्ण है। प्रस्तुत शोध पत्र में एक स्वस्थ सांस्कृतिक छवि निर्मित करने में जनमाध्यमों की भूमिका का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

tuek/;e vkj lLdfr % जनमाध्यम समाजीकरण का महत्वपूर्ण माध्यम है। जनमाध्यम परंपरागत मान्यताओं को पुष्ट कर सामाजिक और सांस्कृतिक गतिविधियों पर पैनी दृष्टि रखते हैं। भारत में पत्र–पत्रिकाए जो जनमाध्यमों का एक सर्वसुलभ प्रकार है प्रकाश में आई है जिन्होंने जन–जीवन में सांस्कृतिक छवि को विकसित किया है।[1]

'संस्कृति' शब्द 'संस्कार' से निर्मित है। 'संस्कार' का तात्पर्य है कुछ कृत्यों या अनुष्ठानों को सम्पन्न करना। 'संस्कारों' को सम्पन्न करने पर ही मनुष्य सामाजिक प्राणी बनता है। इस प्रकार 'संस्कृति' का सामान्य अर्थ होता है विभिन्न संस्कारों द्वारा सामाजिक जीवन के उद्देश्यों की प्राप्ति। समाजशास्त्रियों ने संस्कृति को समाज की धरोहर या सामाजिक विरासत माना है। समाज द्वारा निर्मित भौतिक और अभौतिक दोनों पक्षों को संस्कृति में सम्मिलित करते हुए राबर्ट वीरस्टीड ने लिखा है, ''संस्कृति वह सम्पूर्ण जटिलता है जिसमें ये सभी वस्तुएं सम्मिलित है जिन पर हम विचार करते हैं, कार्य करते हैं और

*पूर्व शोध छात्रा, म०मो० मालवीय हिन्दी पत्रकारिता संस्थान, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, उ0प्र0

समाज के सदस्य होने के नाते अपने पास रखते हैं।'' वीरस्टीड आगे कहते हैं, ''संस्कृति के अन्तर्गत हम जीवन जीने या कार्य करने एवं विचार करने के उन सभी तरीकों को शामिल करते हैं जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होते हैं और जो समाज के स्वीकृत अंग बन चुके हैं।''

संस्कृति की कोई सर्वमान्य परिभाषा देना मुश्किल है। इसका मुख्य कारण– संस्कृति शब्द की जटिलता और व्यापकता है। संस्कृति का लक्ष्य ही व्यक्ति को महिमामय जीवन प्रदान करना है।[2]

lkLd`frd vfHk#fp dk fodkl esa lgk;d tuek/;e % सांस्कृतिक शब्द संस्कृति से जुड़ा हुआ है और संस्कृति मनुष्य की संस्कारशील अवस्था का नाम है। संस्कृति वह है जो हमारी आन्तरिक रुचियों को प्रकट करती है तथा हमारे मन, मस्तिष्क को परिष्कृतियों की ओर अग्रसर करती है। यह विकास जनमाध्यमों से किया जा सकता है।

जनमाध्यमों ने हमारी सांस्कृतिक अभिरुचियों को विकसित किया है। सांस्कृतिक अभिरुचि के अन्तर्गत धर्म, नीति, दर्शन समाज–साहित्य अथवा मनोरंजन के साधन आते हैं। जनमाध्यमों ने बौद्धिक, भौतिक और वैज्ञानिक चेतना को सांस्कृतिक आवरण में लपेट दिया है। हंस, ज्ञानोदय, दिनमान, कादम्बिनी, धर्मयुग,सरिता, मुक्ता ऐसी अनेक पत्र–पत्रिकायें हैं, जिन्होंने हमारे सांस्कृतिक मूल्यों को विकसित करने में सहायक होते हैं। ये पत्रिकायें हमारे आत्मिक परिष्कार के लिए तो उपयोगी है ही वहीं इन पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से स्वस्थ सांस्कृतिक सन्दर्भ हमारे जीवन से जुड़ जाता है।[3]

tuek/;e dk lkLd`frd y{; % संस्कृति और संचार दोनों की विषयवस्तु मनुष्य है। संस्कृति का निर्माण समाज के प्रत्येक व्यक्ति के द्वारा किया जता है। सभी व्यक्ति अपने ज्ञान अनुभवों को एक–दूसरे से बाँटकर संस्कृति की निन्तरता बनाए रखते हैं। अपनी सांस्कृतिक विरासत की रक्षा करने एवं उसके प्रचार–प्रसार के लिए विभिन्न जनमाध्यमों की आवश्यकता होती है। संस्कृति और संचार एक–दूसरे के पूरक हैं और मानवीय विकास के साधन हैं।[4]

जनमाध्यम निम्नलिखित सांस्कृतिक लक्ष्यों को पूरा करने में सहायक होता है–

1. जनमाध्यम विभिन्न संस्कृतियों को एक–दूसरे के समीप लाने और इस तरह के सांस्कृतिक सामंजस्य को बढ़ाने में सहायक होते हैं।
2. जनमाध्यम अभिजात्य कला एवं सांस्कृतिक रूपों को आम लोगों तक पहुँचाने में सहायक हैं।

3. जनमाध्यम लोगों की सृजनात्मक क्षमता की पूर्ति हेतु कहीं ज्यादा और बेहतर अवसर प्रदान करते हैं।
4. जनमाध्यम सांस्कृतिक वर्चस्व कायम करने का एक सशक्त माध्यम है।
5. जनमाध्यम अपसंस्कृति को लोकप्रिय बनाने में भी अहम् भूमिका निभाते हैं।[5]

uo lkLd`fr dh LFkkiuk vkSj tu lkLd`fr dh uohu 0;k[;k % वर्तमान समय भूमण्डलीकरण का है। इसकी प्रक्रिया में नित नयी प्रेरणायें, परिकल्पनायें और विचारधारायें देश, समाज तथा मनुष्य को आन्दोलित करती है। विश्व मानचित्र पर उभरे उच्च प्रौद्योगिकी स्त्रोत ने विश्वग्राम की संकल्पना को साकार रूप दिया है।

वास्तव में भूमण्डलीकरण विभिन्न देशों के बीच निर्बाध आर्थिक संबंधों की ऐसी प्रक्रिया है, जो एक निश्चित सर्वमान्य अन्तर्राष्ट्रीय शर्तों तथा नियमों से प्रदर्शित होती है। आज समाजवाद और पूँजीवाद ने राष्ट्रों के आर्थिक बाजार पर कब्जा कर लिया है।[6] परिणामस्वरूप हम अपनी मूल संस्कृति के प्रति उदासीन होते जा रहे हैं। यही सांस्कृतिक नवीनता है। आज का अभिजात्य वर्ग इन सभी बातों को 'नवसंस्कृति' के नाम से अपनाता जा रहा है। नवसंस्कृति के संचरण में आधुनिक जनमाध्यमों की महत्वपूर्ण भूमिका है। सोशल माध्यमों के आ जाने से इस 'नवसंस्कृति' को और बढ़ावा मिल रहा है।

समाज पर व्यापार के अधिपत्य की नवउदारवादी विचारधारा आज विश्व राजनीति के केन्द्र में है। ऐसे में 'मास कल्चर' के नाम से प्रसिद्ध 'जन संस्कृति' की नयी अवधारणा ने जन्म लिया है। यद्यपि 'मास कल्चर' का प्रादुर्भाव ब्रिटेन में औद्योगिक क्रान्ति के समय से ही हो चुका था किन्तु वर्तमान समय में 'जनसंस्कृति' की जो व्याख्या समाज में वैज्ञानिकों द्वारा दी गयी है उसका प्रमुख आधार वर्तमान विश्व की आर्थिक व्यवस्था है।[7]

lkLd`frd vfLerk dk vkxzg % वैश्वीकरण और आर्थिक उदारवाद ने समाज का नजरिया बदला जरूर है, किन्तु वर्तमान में भी उसकी जड़े परम्परा और विरासत में बनी हुई है। जनमाध्यमों की सामग्री (कंटेट) में भारतीय मध्यवर्गीय आग्रह के अनुसार अमेरिकी और यूरोपीय ढंग की जीवन शैली, खानपान और मनोरंजन के साथ पारंपरिक भारतीय संस्कृति की छौंक भी बराबर दिया जा रहा है। सांस्कृतिक अस्मिता के प्रति आग्रह की इस मनोवृत्ति के कारण जनमाध्यमों ने अपनी सामग्री में ज्योतिष, योग, वास्तुशास्त्र आदि जैसी सामग्री को सर्वथा सम्मिलित किया है। इसी प्रकार पारंपरिक पर्व–त्योहारों

पर भी विशेष सामग्री निरंतर प्रकाशित की जा रही है। बाजार की दिलचस्पी बढ़ी हुई क्रय शक्त और उपभोग क्षमता से बड़े उपभोक्ता समूह के रूप में वैश्विक पहचान बनाने वाले भारतीय संस्कृति में है।[8]

fu"d"k % वर्तमान विश्व एक ऐसे दौर से गुजर रहा है जिसे संस्कृति का संक्रमण काल कहा जा सकता है। पुराने पारम्परिक, सांस्कृतिक मूल्यों का लोप हो रहा है और नवीन संस्कृतियों और उनके मूल्य विस्तार पा रहे हैं। ऐसे में जनमाध्यमों की आवश्यकता, उपयोगिता और महत्ता बढ़ गयी है। वैश्वीकरण के फलस्वरूप संचार क्रांति और सूचना प्रौद्योगिकी ने सम्पूर्ण विश्व के परिदृश्य को बदल दिया है। अब स्थान और समय की बाधा सूचना प्रवाह को बाधित नहीं कर पा रही है। पहले पाश्चात्य संस्कृति, पूर्वी संस्कृति, एशियाई संस्कृति, यूरोपीय संस्कृति और अफ्रीकी संस्कृति के नाम से संस्कृतियों की पहचान बनी हुई थी अब यह सब आपस में मिश्रित हो गई है। अब एक सांस्कृतिक समुदाय में ही अनेक संस्कृतियों के लक्षण पाए जाने लगे हैं। इसे वैश्विक संस्कृति कहा जाने लगा है जिससे विश्व ग्राम की संकल्पना ने साकार रूप लिया। इस विश्व ग्राम संस्कृति का निरूपण मीडिया के द्वारा ही हो रहा है। इस समसामयिक संदर्भ में विश्व की संस्कृति को संचालित और नियंत्रित करने का भार जनमाध्यमों पर ही है।

lUnHk %

1. तिवारी, अर्जुन, जनसंचार समग्र, उपकार प्रकाशन, आगरा, पृ०8.
2. उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय के पत्रकारिता और जनसंचार–01 में परास्नातक, प्रमुख सांस्कृतिक अवधारणा–02 की अध्ययन सामग्री, पृ० 7,8.
3. त्रिपाठी, डॉ० रमेश चन्द्र, पत्रकारिता के सिद्धान्त, नमन प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय संस्करण : 2002, पृ० 143, 144.
4. उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, उपर्युक्त, पृ० 17, 18.
5. जैन, रमेश, जनसंचार विश्वकोष, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, प्रथम संस्करण : 2007, पृ० 277.
6. मीडिया विमर्श, दिसम्बर 2013, बदलाव के 22 बरस, विशेष अंक–2, पृ० 63.
7. उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय के पत्रकारिता एवं जनसंचार–01 में परास्नातक, अन्तर सांस्कृतिक संचार–03 की अध्ययन सामग्री, पृ० 56, 60.
8. विदुर, अक्टूबर–दिसम्बर 2007, अंक–4, वर्ष–44, पृ० 46.

*****

Hkkjrh; lekt e Lor=rk iol efgykvk dh fLFkfr ,o mlls lEcfU/kr ikfo/kku

exyk ilkn iVy*

भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति बहुत ही दयनीय थी। उनमें से अनेक का जीवन जन्म से लेकर मृत्यु तक दुःख और अपमान की एक लम्बी कहानी थी। 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ के चरणों में महिलाओं के अधिकार को छीना जा रहा था महिलाओं के ऊपर कई प्रकार के वज्राघात हो रहे थे। भारतीय समाज में विभिन्न प्रकार की कुप्रथाएं अपना जड़ जमा रही थी। इन प्रथाओं को समाप्त करने के तत्कालीन समाज में सुधार आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। कवि सुमित्रानन्दन पंत जी ने महिलाओं का शोषण देखकर अपना आक्रोश नीचे लिखित पंक्तियों में प्रकट किया है।

^^eDr djk ukjh dk ekuo fpj cfUnuh ukjh dkA**

उक्त समय काल में महिलाओं के विरूद्ध अपराधों एवं हिंसा के निवारण हेतु अधोलिखित प्रावधान किया गया है–

%v% o';kofRr mUeyu gr fof/k iko/kku % वेश्यावृत्ति प्राचीनकाल से भारतीय समाज में विद्यमान थी। सन् 1668 में ट्रस्ट इण्डिया कम्पनी ने कड़ाई से कदम उठाने के लिए विनियम बनाया। भारतीय दण्ड संहिता, 1860 में अधिनियमित किया गया जिसमें यौन अपराध तथा नाबालिग लड़कियों को उनकी इच्छा के विरूद्ध वेश्यावृत्ति के लिए बाध्य, उनके अनैतिक व्यापार को प्रतिबन्धित एवं दण्डनीय बनाया गया।

%c% lrh iFkk mUeyu d fy, vf/kfu;e % सती प्रथा का प्रचलन हिन्दू उच्च जातियों में प्राचीन समय से चला आ रहा है। इसमें पति की मृत्यु के पश्चात् उसके पत्नी को भी उसके साथ जलाकर समाप्त कर दिया जाता था। बंगाल प्रेसीडेन्सी में सन् 1815 से सन् 1828 तक ब्रिटिश शासन के समय सती दाह की 1834 घटनाएं हुई थी– समाज सुधारक राजा राम मोहन राय के

*शोध छात्र, टी0एम0 भागलपुर विश्वविद्यालय, बिहार

अथक प्रयास से सन् 1929ई0 में लार्ड विलियम बैटिंक के कार्यकाल में सती निरोधक कानून द्वारा इस क्रूर प्रथा पर रोक लगा दी गयी तथा इसमें शामिल सभी व्यक्ति अपराधी होंगे।

¼l½ fo/kok iufookg gr vf/kfu;e % प्राचीनकाल से ही विधवाओं की स्थिति अत्यन्त दयनीय रही है। ईश्वरचन्द्र विद्या सागर के अथक प्रयास के परिणामस्वरूप विधवा पुर्नविवाह अधिनियम 1856 में पास हुआ।

¼n½ vkfFkd fLFkfr l/kkj d fy, vf/kfu;e % महिलाओं की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1929, हिन्दू स्त्रियों का सम्पत्ति अधिकार अधिनियम 1939, फैक्ट्री अधिनियम 1948, कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम 1948, तथा प्रसूति लाभ अधिनियम 1948 आदि। ब्रिटिश शासन द्वारा पारित किया गया। जो महिलाओं की दशा में विशेष परिवर्तन नहीं ला सके।

उपरोक्त विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि महिलाओं को निकृष्ट आश्रित तथा शोषण से बचाने के प्रयत्नों में परिवर्तन आ रहा है तथापि यह परिवर्तन योजना बद्ध नहीं हुआ है। ejlu ने हमारी संस्कृति में स्त्रियों की एकान्तता तथा उनके निम्न स्तर के लिए पांच कारकों को उत्तरदायी बताया है जो निम्न है– हिन्दू–धर्म, जाति–व्यवस्था, संयुक्त–परिवार, इस्लामी–शासन तथा उपनिवेश–वाद।

पारिवारिक क्षेत्र में भी महिलाओं को कुछ भी अधिकार नहीं प्राप्त था, सब प्रकार के अधिकार पुरूष को प्राप्त था। सन् 1937 के पूर्व विशेषाधिकार नहीं प्राप्त थे। इन्हें अधिक से अधिक भरण–पोषण का अधिकार था स्त्रीधन के अतिरिक्त इन्हें और कोई सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार प्राप्त नहीं था। स्त्री स्वयं वस्तु या सम्पत्ति के रूप में समझी जाती थी स्त्री के द्वारा किसी प्रकार का कोई आर्थिक कार्य करना अनुचित एवं अनैतिक माना जाता था। आर्थिक दृष्टि से कोई काम करना उनकी कुलीनता के विरूद्ध माना जाता था। श्री पणिक्कर ने लिखा है कि हिन्दू समाज में पुत्री के अधिकार को कानून द्वारा समाप्त कर दिया गया, पत्नि–पति के परिवार का एक अंग बन गयी और विधवाओं को मृत समान मान लिया गया।

यद्यपि राजनीतिक क्षेत्र में भी महिलाओं की भागीदारी नहीं थी परन्तु सन् 1937 में पति की सम्पत्ति एवं शिक्षा के आधार पर कुछ महिलाओं को वोट देने का अधिकार प्राप्त हुआ। स्वतन्त्रता पूर्व महिलाओं की साक्षरता 6 प्रतिशत से भी कम थी। बाल विवाह 10वें पर्दा–प्रथा के प्रचलन ने महिला शिक्षा में

विशेष बाधा पहुंचायी। महिलाओं के सम्बन्धों का क्षेत्र पिता और पति के परिवार तक ही सीमित था।

बीसवीं शताब्दी में महात्मा गांधी ने जहां स्त्रियों की स्थिति को सुधारने का प्रयत्न किया एवं स्त्री–पुरूष समानता का समर्थन किया वहीं उन्हें राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने के लिए प्रेरित किया। कई महिला संगठनों ने भी महिलाओं में चेतना जागृत करने और उनकी स्थिति में सुधार लाने की दृष्टि से महत्वपूर्ण कार्य किये। सन् 1917 में मद्रास में ''भारतीय महिला समिति'' गठित की गयी। विभिन्न महिला संगठनों के प्रयत्नों से देश में ''अखिल भारतीय महिला सम्मेलन'' की स्थापना की गयी और सन् 1927 में पूना में इसका प्रथम अधिवेशन हुआ। इस संगठन ने सन् 1932 में दिल्ली में 'लेडी इरविन कालेज' की स्थापना की गयी। इससे स्त्रियों के लिए पुरुषों के समान सम्पत्ति अधिकारों और वयस्क मताधिकार की मांग रखी। इस संगठन के अलावा मण्डल अखिल भारतीय स्त्री, शिक्षा संस्थान एवं कस्तूरबा गांधी स्मारक ट्रस्ट आदि महिला संगठनों ने महिलाओं की निर्योग्यताओं को दूर करने, सामाजिक कुरीतियों को समाप्त करने तथा महिला शिक्षा का प्रसार करने की दृष्टि से महत्वपूर्ण कार्य किये।

lUnHkZ %

1. अर्जुन देव, इन्दिरा अर्जुनदेव, ''सामाजिक विज्ञान'', भाग–1, ''आधुनिक भारत'' एन.सी.ई.आर.टी., पृ0 81
2. सुमित्रानन्दन पंत, 'आस्था', पृ0 90
3. राम आहुजा, भारतीय सामाजिक व्यवस्था, पृ0 86
4. एन.एन., ओझा (सम्पादक), ''भारत की सामाजिक समस्याएं'', क्रमिन, पृ0 182
5. विपिनचन्द्र, ''आधुनिक भारत'', एन.सी.ई.आर.टी., पृ0 79
6. राम आहूजा, भारतीय सामाजिक व्यवस्था, पृ0 88, 89
7. के.एम., पणिक्कर, द हिन्दू सोसाइटी एण्ड क्रास रोड्स, पृ0 36

*****

ikphu 'kf{kd dUnz d: lnHkZ esa ckS) I?kks ,oa fogkjk dh iHkko'khyrk

';kek JhokLro*

प्राचीनकालीन शिक्षा व्यवस्था को ध्यान में रखकर हिन्दुस्तान को विश्वगुरू की उपाधि से विभूषित किया जाता हैं। इस शिक्षा के मूल में शास्त्रों के साथ विवेक समस्त शिक्षा का समन्वय होना था। जिसका उद्देश्य व्यक्ति और समाज का आध्यात्मिक और बौद्धिक उत्कर्ष करना था। प्राचीनकालीन शिक्षाव्यवस्था के केन्द्र में मंदिर और विहारों की अति गम्भीर भूमिका स्वीकार योग्य है। सम्पूर्ण प्राचीन काल में शिक्षा का आधार जनवादी नहीं रहा। शिक्षा खास वर्गों तक ही सीमित रही। यद्यपि बौद्ध एवं जैन परम्पराओं ने शिक्षा को उपेक्षित एवं शोषित वर्ग तक पहुँचाने का प्रयत्न किया लेकिन फिर भी देश का एक बडा वर्ग शिक्षा के लाभों से वंचित बना रहा। बौद्ध शिक्षा के प्रमुख केन्द्र बौद्ध संघ और बाद में बौद्ध मठ थे। बौद्ध धर्म में महिलाओं समेत चारों वर्णों के लिए शिक्षा के द्वार खोल दिये। इस विचारधारा में किसी भी जाति का व्यक्ति गुरू बन सकता था और वह आदरणीय था तत्कालीन जटिल ब्राह्मणवादी व्यवस्था में बुद्ध ने शिक्षा को उदार स्वरूप में प्रस्तुत किया जिसके अर्न्तगत अन्तर्गत बौद्ध धर्म से संबंधित मठ एवं विहार आदि का उल्लेख समीचीन है।[1]

महात्मा बुद्ध अनीश्वर एवं नास्तिकवादी थे। उन्होंने सामाजिक संरचनात्मक सुधार के अन्तर्गत शिक्षा को समतावादी ढाँचे पर स्थापित किया। उन्होंने ईश्वर एवं वेदों की अपौरूषेयता का खण्डन कर परंपरागत शिक्षा व्यवस्था पर आघात किया। वह परिवर्तन के साथ सहअस्तित्व में विश्वास करते थे।[2] बौद्ध संघ में प्रवेश का प्रथम चरण 'पबज्जा' था। यह संस्कार 15 वर्ष की आयु में किया जाता था। इससें व्यक्ति को प्राथमिक सदस्यता प्राप्त हो जाती थी। पब्बजा के 5 वर्ष बाद 20 वर्ष की आयु में 'उपसम्पदा' का संस्कार होने के बाद ही व्यक्ति संघ का पूर्ण सदस्य बन पाता था।[3] बुद्ध ने

*शोधार्थी, इतिहास, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर, म0प्र0

अब शिक्षा के माध्यम संस्कृत की जगह जनभाषा पाली को शिक्षा का माध्यम बनाया गया एवं दार्शनिक निरूपण, तर्क, एवं मनन को धर्म, कर्मकाण्ड, मंत्र की जगह शिक्षा की विषय वस्तु बनाया। इस काल में बौद्ध मठ एवं विहार, पूर्व के गुरूकुल, आश्रमों के साथ शैक्षणिक केन्द्र बने रहे।[4] बुद्ध ने अपने दर्शन में मानव की महत्ता पर बल दिया है। इसका प्रभाव उनकी शिक्षा पर भी पडा। उन्होंने 'मानवता' को ध्यान में रखकर शिक्षा का 'उपयोगी' आधार (उपयोगितावाद) प्रस्तुत किया। उन्होंने सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों पर बल दिया। इस संदर्भ में उन्होंने शैक्षणिक गतिशीलता का प्रवाह कर समाज कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया।[5] बुद्ध के बाद उनकी शिक्षाओं की निरन्तरता बनाये रखने बौद्धमठ एवं विहारों की शिक्षा केन्द्र के रूप में स्थापना हुई।[6] इन संस्थाओं के विकास में राजाओं एवं सम्पन्न वर्ग के द्वारा प्रदत्त अनुदान की महत्वपूर्ण भूमिका रही।[7]

कालान्तर में बौद्धमठ एवं विहार भी हिन्दू शैक्षणिक संस्थाओं से आच्छादित होकर इनके समरूप ही हो गये। आगे चलकर बौद्ध शिक्षा के महान केन्द्र के रूप में राजग्रह, वैशाली, श्रावस्ती, कपिलवस्तु का उद्भव हुआ।[8] जिन्होंने बुद्ध की शिक्षाओं का भारत से इतर प्रसार किया। यह प्रासंगिक है कि बौद्ध शिक्षा केन्द्र के रूप मे नालन्दा का महत्व, हिन्दू शिक्षा के केन्द्र तक्षशिला के समान ही महत्वपूर्ण है। नालन्दा विश्वविद्यालय की 5 वी सदी में स्थापना गुप्त शासक कुमारगुप्त ने की थी। जिसके बाद अनेक परवर्ती गुप्त शासकों ने नालन्दा को अनुदान प्रदान किया। यह अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का विश्वप्रसिद्ध विश्वविद्यालय जिसमें कोरिया, चीन, जापान, तिब्बत, बुखारा आदि से विद्यार्थी आते थे। इसमें प्रवेश के नियम कड़े थे। विश्वविद्यालय में व्याख्यान के लिए 7 बडे कक्ष एवं 300 छोटे कक्ष थे। विद्यार्थियों के लिए छात्रावास थे।[9] नालन्दा के खर्च के लिए 200 ग्राम अनुदानित थे। ह्वेनसांग एवं इत्सिंग के समय यहाँ क्रमशः 10,000 एवं 3000 विद्यार्थियों की संख्या थी। धर्मपाल के पश्चात् शीलभद्र (ह्वेनसांग के समय) इसके कुलपति थे। महायान शाखा से संबंधित इस विश्वविद्यालय में नागार्जुन, असंग, वसुबंधु, धर्मकीर्ति आदि ने शिक्षा प्राप्त की थी।[10]

एक अन्य संस्थान श्रावस्ती बिहार में स्थित था। राजा धर्मपाल द्वारा स्थापित विक्रमशिला दूसरा महान अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध शैक्षणिक केन्द्र था। तांत्रिक बौद्ध सम्प्रदाय के उत्कर्ष के साथ ही आठवीं शताब्दी में इसकी स्थापना हुई। यहाँ बौद्ध धर्म, दर्शन, न्याय, तत्व ज्ञान, व्याकरण, आदि शिक्षा के विषय थे। सूत्रों से पता चलता है कि इस आवासीय विश्वविद्यालय में

तिब्बत से सर्वाधिक छात्र आया करते थे। रक्षित विरोचन, दीपशंकर, शांति रत्नाकार यहीं के विद्वान थे। नालन्दा के विपरीत यहाँ का समस्त व्यय धनी लोगों के द्वारा दान पर निर्भर था। 1202 ई. में मोहम्मद बिन बख्तियार खिलजी ने अनेक बौद्धभिक्षुओं, ब्राह्मण शिक्षार्थियों के साथ इसे नष्ट कर दिया।[11]

गुजरात में बल्लभी भी एक अन्य अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय था जो कि नालन्दा का समकालीन था। यहाँ पहला विहार राजकुमारी हड्डा ने एवं दूसरा विहार 580 ई. में धरसेन ने बनवाया था।[12] यहाँ 100 बौद्ध विहारों और 6000 भिक्षुओं का विवरण ह्वेनसांग ने भी दिया था।[13] यहाँ तर्क, व्याकरण, व्यवहार, साहित्य आदि की शिक्षा दी जाती थी।[14] नालन्दा, तक्षशिला के विपरीत यहाँ 100 करोडपति रहते थे, जो इसे सहयोग प्रदान करते थे। ग्रंथो के लिए भी यहाँ दान प्राप्त होते रहते थे। सल्तनत के उद्भव से इसका प्रभाव भी क्षीण होने लगा। उल्लेखनीय है कि श्रावस्ती में बुद्ध ने सर्वाधिक प्रवास एवं उपदेश प्रदान किए। यहाँ श्रेष्ठी अनाथपिण्डक ने जेतवन विहार का निर्माण कराया था। जिसका सम्राट अशोक एवं हर्ष के समय तक प्रभाव बना रहा। इसके अतिरिक्त विभिन्न विषयों के लिए अनेक बौद्ध पाठशालाएँ थी।[15]

बुद्ध ने स्वास्थ्य एवं सामाजिक व्यवस्था को ध्यान में रखकर रोगियों, अपराधियों को संघ प्रवेश की अनुमति प्रदान नहीं की। ऐतिहासिक तथ्यों के विश्लेषण से इतना स्पष्ट है कि बुद्ध तत्कालीन सामाजिक पराभव के दौर में संघ केन्द्रित सामाजिक सुधार आन्दोलन के अगुवा थे। जब तक बुद्ध की शिक्षाओं पर मठ–संघ–विहार संचालित रहे समाज को गतिशीलता प्राप्त होती रही। ब्राह्मणवादी जटिल शिक्षा व्यवस्था जो बुद्ध के पूर्व से प्रचलित थी, बुद्ध के बाद भी और वर्तमान तक कुछेक रूपान्तरण के साथ प्रचलित रही। यद्यपि मुस्लिम शासन के आघात ने भारत की भूमि से लगभग विलुप्त ही कर दिया। परन्तु बुद्ध आज भी प्रासंगिक हैं उनकी शिक्षाएँ उन्हें आज भी चिर बनाए हुए हैं न केवल भारत अपितु एशिया के अनेक प्रमुख देशों में। मुस्लिम आघात ने बुद्ध की शिक्षाओं की महक को भारत से निकालकर संपूर्ण विश्व में प्रसारित कर दिया।

lUnHk %

1 'प्राचीन भारत', प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, सन् 2000, पृ0 126
2 पाण्डेय, गोविंद चन्द्र, बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ0 143

3 'प्राचीन भारत', प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, सन् 2000, पृ0 126
4 पाण्डेय, गोविंद चन्द्र, बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ0 143
5 शर्मा, रामशरण, पूर्व कालीन भारतीय समाज व्यवस्था तथा अर्थव्यवस्था पर प्रकाश, ओरिएण्ट ब्लैक प्रकाशन
6 वैश्वानस, धर्म प्रश्न, 13,13:2,62
7 वाटर्स–2, पृ0 80
8 मिश्र, जयशंकर, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निर्देशालय दिल्ली, विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित, 1986, पृ0 489
9 वही, पृ0 542
10 वही, पृ0 543
11 उपरोक्त, पृ0 543
12 मिश्र, जयशंकर, पूर्वोवत, पृ0 544
13 वाटर्स–2, पृ0 246
14 मिश्र, जयशंकर, पूर्वोक्त, पृ0 544
15 पाण्डेय, विमलचन्द्र, 'प्राचीन भारत का सामाजिक तथा सांस्कृतिक इतिहास (पूर्व ऐतिहासिक काल से 320 ई. तक), सेन्ट्रल पब्लिशिंग हाऊस, इलाहाबाद, 1995, पृ0 192

*****

dugj ofLu ¼NŸkhlx<½ e: ty iokg i.kkyh% ,d v/;;u

MkW0 t; idk'k 'kDy*

अपवाहन प्रतिरूप का आशय विशेष प्लान या डिजाइन से है जो विभिन्न मार्गों द्वारा सामूहिक रूप बनाया जाता है।[1] अपवाह प्रतिरूप का अर्थ क्षेत्र विशेष की सरिताओं के ज्यामितीय रूप तथा स्थानिक व्यवस्था से है।[2] अपवाह प्रतिरूप के अन्तर्गत किसी भी संहिता विशेष अथवा उसकी सहायक सरिताओं के द्वारा निर्मित उस कार्य जाल का अध्ययन किया जाता है जो प्रथम दृष्ट्या किसी निश्चित स्वरूप को स्पष्ट करता है। अपवाह प्रतिरूप को अपवाह व्यवस्था के रूप में इंगित किया जा सकता है क्योंकि एक बड़ी सरिता की अनेक लघु सरिताएँ होती है। वेसिन के अलग–अलग भागों में अलग प्रकार की भौगोलिक संरचना पायी जाती है साथ ही सम्पूर्ण वेसिन में ढाल चट्टानों की प्रतिरोधक क्षमता, संरचनात्मक नियंत्रण, अनाछादात्मक का कालानुक्रम, आधारगति संरचना और सतही संरचना में अन्तर आदि विशेषताएँ अलग–अलग पायी जाती है, अतएव मुख्य सरिता अपना एक निश्चित प्रकार के प्रवाह प्रतिरूप का निर्माण करती है जबकि उसकी सहायक सरिताएँ अलग–अलग प्रकार के प्रवाह प्रतिरूप का निर्माण करती है।[3]

v/;;u {k= %

कनहर वेसिन विंध्याचल बुन्देलखण्ड प्रदेश का अभिन्न अंग है जो इस प्रदेश के सुदूर उत्तर–पूर्वी सीमांत भाग पर 5988.69 वर्ग किमी0 क्षेत्र पर फैला हुआ है। जिसका देशान्तरीय विस्तार $92^{0}42'$ $30''$ E से $84^{0}4'$ $25''$ E मध्य और अक्षांशीय विस्तार $23^{0}1'$ N से $24^{0}28'$ $30''$ N के मध्य है। इस वेसिन के अन्तर्गत छत्तीसगढ़ के उत्तर पूरब में स्थित सरगुजा एवं रामगढ़ जनपद, बिहार के पलामू जनपद एवं उत्तर प्रदेश के सोनभद्र जनपद के भाग सम्मिलित है कनहर नदी प्रायद्वीपीय भारत के उत्तरी–पूर्वी भाग में प्रवाहित

*असि0 प्रो0, भूगोल विभाग, मड़ियाहूँ पी0जी0 कालेज, मड़ियाहूँ, जौनपुर, उ0प्र0

होती है जिसका उत्तरी भाग जसपुर और भानपुर प्रदेशों के अन्तर्गत अवस्थित है। कनहर वेसिन की पश्चिमी सीमा का निर्धारण रेहर नदी के जल विभाजक द्वारा, दक्षिणी सीमा का सीमांकन, मन्द नदी के जल विभाजक द्वारा एवं पूर्वी सीमा का अलगाव उत्तरी कोयलन के जल विभाजक द्वारा होता है। कनहर नदी की प्रमुख सहायक सरिताएँ पंगान, भेमा, सुखरापंगा, सुखारी, मलौया, उर्सा, बांकी, खानरसों, सेमरखाइ, सुरिया प्रथम, सुरिया द्वितीय, घरसोत, चानन, चुमकी, ढंगुरा, गोइथा, सरसोई, दुरहुल, बिनगंगा आदि है। इस वेसिन का दक्षिणी भाग व वेसाल्ट निर्मित पाट प्रदेश पर,मध्यवर्ती भाग प्रोटेरोजोइक संरचना पर एवं मुहाना प्रदेश बीजावर संरचना पर विस्तृत हैं। कनहर वेसिन की अधिकतम लम्बाई 171.5 किलोमीटर, चौड़ाई 70.25 किलोमीटर, ऊंचाई 1240 मीटर एवं न्यूनतम उँचाई 156 मीटर है। इसकी पश्चिमी 664.5 किलोमीटर, वायुदूरी 171.5 किलोमीटर, घाटी लम्बाई 242.25 किलोमीटर, जल मार्ग लम्बाई 296.75 किलोमीटर, स्रोत की ऊँचाई 1004 मीटर एवं मुहांन की ऊँचाई 156 मीटर है।[4]

iokg ifr :Ik %

कनहर प्रवाह प्रणाली मूलतः वृक्षाकार प्रवाह प्रणाली है जो पाट प्रदेश गोंडवाना सतह एवं धारवड़ कालीन वीजावर संरचना पर प्रवाहित होती है। कनहर नदी 975 मीटर की ऊँचाई से लवमुरहा गांव (जो कि तिरंगा संक्षित वन में स्थित है) के 1.5 किलोमीटर दक्षिण से उद्भवित होती है तथा 18 किलोमीटर सीधी उत्तर दिशा की ओर प्रवाहित होने के उपरान्त उत्तर –पश्चिम दिशा में मुड़ जाती है जिसमें चम्पा गांव के पास सुरिया प्रथम अपनी सहायक सरिताओं के साथ मिल जाती है, जो पंचम श्रेणी की सरिता है। कनहर के समानन्तर की ओर प्रवाहित होने वाली दूसरी प्रमुख सरिता सुरिया जो 140 मीटर की ऊँचाई से पण्डरापाट से जन्म लेकर अपनी सहायक सरिताओं के साथ डीपाडीह के पास कनहर में क्षिप्रिका का निर्माण करती हुई मिलती है। यहां सुरिया का जल 3.5 मीटर की ऊँचाई से कनहर में गिरकर मिलता है। गलफुला नदी 980 मीटर की ऊँचाई पर करून्दना गांव के पास से निकलकर अपनी सहायक सरिताओं डिकानों, कटंगा, विनगंगा, खरैया, पोड़ी, कोडवा, बलारी आदि के जल के साथ कर्मी गांव के पास कनहर में मिलती है। बिनगंगा और कातिकहवा नाला के संगम पर बालू में लेखक ने अभ्रक के टुकड़े स्पष्ट देखा। गलफुला की सहायक सरिताएँ गलीय अपरदन करके बीहड़ का निर्माण करती हैं। क्षेत्र सर्वेक्षण के समय शोधार्थी ने पाया कि

इस सम्पूर्ण प्रदेश में बीहड़ निर्माण के कारण भूभाग विषम हो गया है तथा भूमि कृषि के अयोग्य हो गयी है जिससे गलफुला वेसिन बंजर भूमि में परिवर्तित हो गया है।

कनहर नदी में इसकी निचली घाटी में पूरब की ओर से मिलने वाली लघु सरिताओं में दलदली नाला, दनमरवा नाला, कटरूइचा नाला, हरइयाखारी नाला आदि महत्वपूर्ण हैं। अंततः कनहर नदी कोटा गांव के पास देवतरा पहाड़ और जोगियाबीर पहाड़ के मध्य संकीर्ण घाटी का निर्माण करती हुई तथा पुनः विस्तृत घाटी का निर्माण करती हुई अपनी समस्त सहायक सरिताओं के जल के साथ अपना जल कोटा गांव से 2.5 किलोमीटर उत्तर सीन को समर्पित कर देती है। कनहर और सीन के संगम पर दोनों नदियों के जल दूर तक विभाजित दिखाई पड़ते हैं क्योंकि कनहर का जल स्वच्छ होता है और सोन नदी का जल पीली मोरम की अधिकता के कारण सुनहले रंग का होता है। कोटा गांव से संगम तक पद यात्रा करके लेखक ने पाया कि कनहर–सोन संगम पर 12 मीटर मोटी मोरम का जमाव हुआ हैं।

कनहर वेसिन में कनहर उसकी सहायक नदियाँ मूलतः वृक्षाकार प्रवाह की रचना करती हैं निचले एवं मध्य वेसिन में ग्रेनाइट एवं नीश चट्टानों में आयताकार प्रवाह प्रणाली का विकास हुआ है। पाट प्रदेश में पास के चतुर्दिक लघु सरिताओं का जन्म होता है अतः आरीय प्रवाह प्रणाली मिलती है। वस्तुतः पाट प्रदेश में कनहर घाटी लावा पर प्रवाहित होती है और सम्पूर्ण कनहर घाटी बहुचक्रीय घाटी के रूप में है।

lUnHkZ %

1. गौतम. अल्का, 2010; भौतिक भूगोल, रस्तोगी प्रकाशन, मेरठ
2. शम्भू. राम एवं सिंह. एस.पी., 2011; बीरमा वेसिन मध्य प्रदेश मे अपवाहन तंत्र के विकास का एक प्राकृतिक अध्ययन
3. जम्बू द्वीप (शोध पत्रिका), वल्यूम प्रथम, पृ0 53
4. थार्नवारी. डब्लू.डी., 1994; प्रिन्सपल्स ऑफ जियोमार्फोलॉजी जॉनवीले एण्ड सन्स, आइका न्यूयार्क, पृ0 1–14

*****

Malaviyaji Vision For Technical Education

Vivekanand Gupta*

Malaviyaji' was born just after the so- called Indian Mutiny of 1857. In the next two or three decades following this First War of Freedom the entire country was passing through a National Renaissance in every sphere of life- social, economic, political, religious and educational. The spirit of many great sons of this land rose in revolt against the British domination. Mahamana Malaviyaji was one of them. He joined the Indian National Congress immediately after its establishment, made his maiden speech before the great national gathering at its second session held at Calcutta in 1886 and became an ardent champion of Indian Nationalism. During his tours of the country in the subsequent years while attending the Congress sessions, Malaviyaji had the opportunity to observe the conditions existing in the country In the various spheres. He felt that religion was being neglected everywhere and that patriotism was impossible without religion. The unity of life which is the essence of religion is also the basis of morality and of all true patriotism. Malaviyaji, therefore, come to the conclusion that in order to revitalize India as a nation, it was necessary to feed here youth with the old spiritual and moral food that religion must be a part of the education founded on India ideals and can reached with results achieved by the science and the learning of the waist.[1]

Malaviya advocated the promotion of technical education and indigenous industries as a remedy for India's poverty. As a result of his efforts the congress urged the establishment of a least one central fully equipped polytechnic institute on per with the best engineering institutions in the world for the first time in 1904. It also

*Research Scholar, A.P.S. University, Riwa, M.P.

we commended the establishment of miner technical schools and colleges in different provinces. It pressed for free hand gradually compulsory primary education as well as technical education based on local requirements in 1906.

Under Malaviya Ji's leadership the indian industrial conference started meeting regularly as an adjunct of the national congress since 1905 when it first met in Varanasi. In this conference Malaviya ji said, '…India in poverty! Midas starving amid hips of gold does not afford a greater paradox: at here we have India, Midas-like, starving in the midst of untold wealth'. He realized that India's backwardness was not due to paucity of natural resources but due to lack of a proper system of education. Consequently, the industrial conference of 1905 held at varanasi and the subsequent one held in 1907 at Nainital, pride to impress upon British Government the need for providing technical, industrial and commercial education throughout the country.[2]

This prospectus clearly stated that ' India cannot regain her prosperity until the study and application of modern sciences becomes, so to speak, naturalized in the country…. Technical education cannot be expected to make any real progress until there is, at least, one well appointed polytechnic institution in the country capable of giving efficient instruction in the principles and practice of the technical art which help the production of the principles necessaries of life of the IndianPopulation.[3]

Malaviya Ji we lived that the ultimate goal of technical education should be to achieved economic self reliance. The third object of Banaras Hindu University given in the final prospectus and followed to this day which states:

" To advance and defused such scientific, technical and professional knowledge combined with the necessary practical training, as is best calculated to help in promoting indigenous industries and in developing the material resources of the country.

Malaviaya Ji was unfortunately not able to realize is original dream of imparting scientific and technical education through the medium of Hindi. In fact, he initially visualized a scheme of education In which instruction could be in parted in Sanskrit to all who desired it. But, in the face of practical difficulties Mahamana had to put these scheme in abeyance.[4]

However, Malaviya ji insured that religious instructions should be a part of teaching at BHU. He wanted to bring the students under a system of education which would enable them to pursue the three great aims of life i.e. Dharma, Artha and Kama laid down in the scriptures. It was his objective to traind students not only in the production of material wealth but also to make them into good citizens. In Mahamana's words, "Being able to earn wealth by honourable means, they will be above temptations to unworthy conduct and being inspired by high principles imbibed from Sanskrit learning, they will be men of unswerving incorruptible integrity. [5]

References :

1. Sohmskandan,S Malaviyaji's Contribution to Highler Education, Prajna: val.56, Part-2, Year 2010-11, p. 284
2. Parmanand (1985). The Mahamana Madan Mohan Malaviya, Vol. I. Varanasi: Banars Hindu University Press.
3. Singh, D.P & Nath, PR. (2009). J.C. Bose, Swami Vivekananda and Malaviya Ji in Souvenir (National BHU Alumni Meet 2009), pp. 30-34.
4. Singh, D.P. and Nath, P.R. (2007) Prateechi Prachi Ka male Sunder. In souvenir (Indian Pharmaceutical Congress), pp. 1-4
5. Sohmskandan, s. Ibid. P. 260

*****

Humanistic Social Science

Anil kumar*

The point of view of the social sciences, there were three essential characteristics to the humanistic movement:

I. An epistemology that admits the centrality of human experience as basic data.

II. An emphasis on holistic theoretical models.

III. An advocacy of value-based and value-affirming social science.

The Present and Future of Humanistic Social Science.

I believe that the future of humanistic psychology lies in two areas. The first is a deepening exploration of our underlying philosophical foundations. This implies the continuing exploration of the phenomenological, social constructionist, and human systems approaches that were implicit in the experiential and holistic orientations of the humanistic revolution.

The second area of opportunity lies in the possibility of developing more effective collaboration between theorists, researchers, and practitioners who support humanistic values across all of the the social science disciplines .

There are three areas where interdisciplinary focus and collaboration could be particularly fruitful:

1. Systematic exploration of the relationship between person, community, and society.
2. Addressing the Internal organizational challenges of decreasing marginality and increasing diversity.
3. Developing a concept of deep democracy that would extend democracy from the political to the cultural and economic arenas.

*UGC Net, Manas Mandir Durgakund, Varanasi, UP

Organizational Issues: Diversity.

Humanistic psychology and sociology are both deeply committed to diversifying participation in our organizations. I believe that achieving ethnic diversity and gender diversity are different challenges. In humanistic psychology, we have been far more successful in achieving gender equity than we have in the ethnic arena. This may be because, in the context of the humanistic movement, men and women share a common understanding of the meanings of terms such as “person,” “gender.” “equality,” and “fairness” that facilitates transgender dialogue in a variety of dimensions. Achieving ethnic diversity, however, presents a more complex challenge. I believe that an important part of this challenge is to define our own ethnic heritage.

Fortunately, constructionist epistemology, which, as noted above, shares common roots with humanistic psychology’s philosopy of science, is a useful approach for understanding a culturally pluralistic world. In particular, it offers the possibility of philosophical and social policy analyses that can address multicultural and transcultural issues, including those of a global economy and ecology. A new generation of humanistic social theory that is both ethnically self-conscious and committed to multicultural political and moral values would help us find better approaches to effectively serving a global, polycultural society.

Deep Democracy.

Traditionally, democracy has been associated primarily with the political arena. However, progressive social evolution in the postmodern world requires that the democratic values of equality and participation be extended into the economic and cultural arenas as well. Humanistic social scientists, who have been living with these values for years, should be as well equipped as anyone to provide a theoretical framework and practical strategies for this extension. My suspicion is that the key to his lies in focusing on organizations at the community level of scale. After all, it is only at this level that truly interactive whole person participation is even possible.

Conclusion

It is clear that the new world being created by information and communications technologies will be very different from the modern world created by the first industrial revolution. It is also

clear that "value-free" social science, which is a thinly-veiled privileging of technocratic and patriarchal values, is reaching the limits of its usefulness. The humanistic social sciences have several decades of honorable history building up critical and value-affirming approaches within their respective disciplinary boundaries. I believe the crucial question for the immediate future, which has sometimes been called the "postmodern era," is whether the humanistic disciplines can collaborate to articulate a convincing metanarrative of multicultural and ecologically sustainable values, while creating effective and concrete interdisciplinary approaches to solving a wide range of ecological and social problems which appear to be unsolvable in the context of our society's accepted conventional wisdom. It is certainly worth making the effort!

References :

1. Galliher, James M. & Galliher, John. (1995). Marginality and dissent in twentieth century sociology: The case of Elizabeth Briant Lee and Alfred McClung Lee. Albany, NY: State University of New York Press.
2. Halas, Elsbieta (December 2001). "The Humanistic Approach of Florian Znaniecki". University of Munich. Cite uses deprecated parameters (help)
3. Thomas, William and Florian Znaniecki, ed. Eli Zaretsky (1996). The Polish Peasant in Europe and America: A Classic Work in Immigration History. Urbana: University of Illinois Press.
4. Znaniecki, F. (1934). The method of sociology. New York: Farrar & Rinehart.
5. Davies, Norman (2004). Rising '44: the battle for Warsaw. Viking Books.
6. Payne, M. (2011). Humanistic Social Work, Core Principles in Practice. Chicago: Lyceum, Basingstoke, Palgrave Macmillan.
7. Znaniecki, F. (1983). Cultural Reality. Houston, Texas: Cap and Gown Press.

*****

'Indigenous' Healing Systems and Perceptions on Leprosy

Manmohan Krishna*

Abstract: This article explores various 'indigenous' healing methods practised by different sections of society in colonial Bihar and Chotanagpur. It focuses on both informal and formal healing systems. By formal healing system, one is referring to an organised set of systems of healing - i.e. Ayurveda, Siddha and missionary medicine. These organised systems were based on a corpus of knowledge available in various books and treatises. Here, this article particularly focuses on Ayurvedic and Siddha healing system. Then we have the informal healing system, which includes the Santhal perception of wellness and illness that remained relatively unorganised. These were based on oral traditions and were passed from one generation to another. The overall effort is to look for similarities and differences when it comes to perceptions of leprosy among the various healing systems.

Key Words: 'Indigenous' Healing, Leprosy, Ayurveda, Santhal

The idea that treatment of a disease depends on its diagnosis is a 'modern' one. During the colonial period the disease was conceptualized and visualized by different communities, religious institutions and the colonial state in different ways. This ranged from associating them with malevolent spirits by the Santhals to seeing them as the result of 'sin' committed by the missionaries. A common thread that seems to have united most of them insofar as far the cause of leprosy is concerned was speculation.

The perceptions of the Santhals : Nature played an important role in the daily life of the Santhals. A kind of natural balance seemed to be the basis of their existence. Thus, 'god' and the 'devil' had fixed spaces. They believed that whenever this balance was altered, the worse for them would start. Illness and disease were something

*Assistant Professor, Janki Devi Memorial College, University of Delhi, Delhi

unnatural for them. Thus, the life of a human being was to span till an old age, and any untoward accident or pre-mature death was considered to be the result of the 'devil's' intervention and ascribed to *bongas* (spirits).[1] The Santhals were aware of the fact that life and death were predestined by god. They believed that death was not an act of divine intervention and that 'god' was associated only with goodness. In the Santhal world view death was related to wickedness of the devil. These perhaps indicate the existence of a natural balance between 'god' and the devil and that their roles could not be swapped.[2]

The Santhals thought of their body as a machine-carriage (*kol-gadi*).[3] This carriage broke down if any part of the machine became dysfunctional. Their understanding of disease was based on *sirs*.[4] They believed that blood flows in these *sirs*. If one of these *sirs* of the body became inoperative then the body became unwell. The dislocated *sir* could lead to a spurt of diseases.[5] The underlying idea behind this is perhaps that if there is any imbalance in the flow of blood circulation, then the body becomes vulnerable to disease.

The Santhal understanding of blood flow offers some clues which show their interaction with the outside world. In some ways their perception of blood circulation through *sirs* had some affinity with Harvey's conceptualization of blood circulation in the human body. It also provides insights about how they located disease. Apart from the *bonga* and *sirs'* theory of causation of disease, the Santhals connected the starting point of diseases to the *tejo* as well.[6] In scientific and medical terms *tejo* can be, perhaps, equated with germs. They called leprosy as *Murho jom.*[7] For them leprosy was supposed to be caused by a specific *tejo.*

The Santhals relied mainly on various pastes, made from herbs and parts of animals, which were applied on the affected parts of the skin. One of the pastes was a mixture of oil obtained from the seeds of *Pongamia glabra*, the tail of the chameleon and chrysalis of a certain butterfly. The last two ingredients were cooked in oil and anointed daily on the affected skin.[8] Another kind of paste was made of fresh shoots of *Bombax malabarium*, cinnabar, saltpetre, red lead and a frog with red a coloured head. All these were ground together and mixed with oil, made of *Brassica campestries*.[9] It was anointed by the leprosy sufferer himself. After some kind of recovery, if numbness persisted then another paste was prepared by grinding poppy seeds, cloves, black pepper and cumin seeds. These blended elements were mixed with *ghotom* (melted butter from cow's milk)

and was applied daily on the affected skin. There were regulations related to diet and certain activities. Thus, the leprosy sufferers were asked to restrain themselves from eating meat and fish, and from consuming any kind of beer and spirits. Besides, they were also asked to abstain completely from sexual intercourse as well.

It seems that the Santhals also believed that leprosy was a direct punishment by the 'creator' for some unrighteous act committed before 'him' and in some cases the patient was consequently termed incurable. Moreover, for them leprosy could be passed from one generation to another. The Santhals also believed that leprosy is communicable and the risk of infection could be avoided by not eating food touched or left by a 'leper'. [10]

The very idea that leprosy was due to unrighteous action can be attributed to outside influence. Thus, the caste notions of 'purity' and 'pollution' that formed the basis of the Hindu caste system seem to have influenced the Santhal world view. These ideas were intermediated by the *ojhas*. The *ojhas* acted as doctors/priests in the Santhal world. In a similar vein the missionaries perhaps also acted as intermediaries who introduced the idea of sin and immorality in the Santhal conceptualisation of disease. Thus, one can also see the convergence of a host of diversities. After all, the colonial state labelled the 'lepers' as a set of degraded and untouchable people, who were considered 'impure' and 'dirty', and who were an eye sore to public gaze.[11]

Non-tribal perceptions: Ayurveda and Siddha : This section explores the formal systems of healing i.e. Ayurveda and Siddha. These medical traditions ascribed bodily health to *vata* (wind), *pita* (bile) and cough (phlegm).[12] The balance of the three humours and elements which were five in Siddha and seven in Ayurveda constituted health and life.[13] It was believed that the imbalance of these elements and humours caused diseases. Leprosy (*peru noy* in Siddha) was considered to be a major disease (*maharog*) and was classified into seven categories according to the disorder of humours, and eighteen types according to the symptoms.[14] The broad sub-division included *maha kushtha* and *kshudra kushtha*. The former constituted seven in number and the later eleven, respectively. In the context of the humours the disorder of wind resulted in three specific forms of leprosy, while the others were caused by a combination of imbalanced humours: wind and heat, phlegm and heat, phlegm and wind.

Sushruta stipulates that leprosy results due to the aggravation of the principle of *vayu* (air) in the person. This aggravation is caused by having improper diet, ingestion of food, physical exercise or sexual intercourse after partaking oleaginous substance, constant use of milk in combination with meat of any domestic and aquatic or amphibian animals.[15] The enraged or aggravated in combination with agitated *pittam* and *kapham* enters into the vessels of the body. These spread over the surface of the body.

Though the treatise refers to the physical aspect of the conceptualisation of the disease, it mentions a verse which indicates that acts of a person – in present/past life, or rebirth – is in some way responsible for the origin of the disease. Thus, it is seen as a disease that results out of divine retribution. It invokes 'wise men' who held that if somebody killed a Brahman or a woman, or one of his own relations, the person was bound to be cursed with leprosy. If the person died with leprosy, he would be re-attacked with it in his next rebirth.[16]

The treatment for leprosy included a strict regulation of one's diet. The treatment included various kinds of oils which were rubbed on the affected parts of the skin. One of these was *vajraka* oil. It was prepared from *sapta parna*, mica, sulphate of iron and white mustard seeds; other ingredients included the urine of a cow. Medicinal plasters were applied on the afflicted skin. The skin of the person was first soothed with clarified butter and then the body was to be fomented. After this the elevated patches on the skin were removed and then the affected part of the skin was constantly covered by medicinal plaster.[17]

In the Ayurveda and the Siddha traditions leprosy was attributed to bad *karma* and bad actions in one's previous life. It was linked to actions like disrespecting one's teacher, Lord *Shiva*, Brahmans, lusting for another man's wife, betraying trust, swearing at mendicants and rape. These obviously indicate prevailing social customs and beliefs. Consequently, the causation of the disease acquired new meanings, with the socio-cultural, economic and moral conditions of the sufferer being taken into. What is also observable is an overlap of ideas between the Ayurveda and the Hindu belief systems when it comes to leprosy.

In order to cure leprosy various rituals were prescribed by the religious texts and the scriptures. In Brahmanical Hinduism it was seen as a curse, a result of which leprosy sufferers had to perform

religious rituals. Thus, brahmanical hegemony needs to be seen as a vital aspect insofar as the treatment of the disease is concerned. The people were advised to worship the *gram sthan* and perform a *puja*. They were advised to make pilgrimages to Gaya and Baidyanath temple to vow before the deity. Bathing in the Ganges was considered to be a remedy for it, as it was thought that this would wash away their sins and restore the 'purity' of the body and the soul.[18]

References :

1 Bodding, P. O., *Studies in Santhal Medicine and Connected Folklore,* Calcutta: The Asiatic Society, 1986 (first published in 1925), p. 1 (hereafter, *Santhal Medicine*).
2 Ibid, *Santhal Medicine*, p. 1.
3 Ibid, *Santhal Medicine*, p. 2.
4 This included muscles, sinews, arteries and veins.
5 Ibid, *Santhal Medicine*, p. 5.
6 By *tejo*, the Santhals meant larvae and worms which could be large and small; a particular *tejo* was responsible for a specific disease.
7 Bodding, *Santhal Medicine*, p. 7.
8 Ibid, *Santhal Medicine*, p. 355.
9 Ibid, *Santhal Medicine*, p. 356.
10 Ibid, *Santhal Medicine*, p. 7.
11 Pati, Biswamoy, 'Siting the Body: Perspectives on Health and Medicine in Colonial Orissa', *Social Scientist*, Vol.26, No. 11/12, 1998, p. 10.
12 Buckingham, Jane, *Leprosy in Colonial South India*, Basingstoke: Palgrave, 2002, p. 63.
13 Ibid, *Leprosy in Colonial South India*, pp. 63-64.
14 Ibid, *Leprosy in Colonial South India*, p. 67.
15 Bhishagratna, Kaviraj Kunjalal *An English Translation of the Sushruta Samhita*, Vol. VII, Calcutta, Bharat Mihir Press, 1911, p. 35 (hereafter, *Sushruta Samhita*).
15 Ibid, *Sushruta Samhita*, p. 42.
16 Ibid, *Sushruta Samhita*, pp. 346-356.
17 Cannon, Rev. E., 'The Preparation of Converts for Baptism' in *Report of a Conference of Leper Asylum Superintendents and Others on the Leper Problem in India*: Cuttack: Orissa Mission Press, 1920, p. 136-37.

*****

Effect of Co-curricular Activities on Students

Dr. Lubhawani Tripathi*

Some time gone by, games and sports, debates drama and music etc. activities were supposed to be out of curriculum and they were called as "Extra-Curricular activities" at that time school authorities did not take any Interest in these activities and sometimes they took them as sheer wastage of time and strength. The controversy that has flickered for years as to the proper place of the student activity programme has been resolved rather effectively through the Justification of student activities on the basic of educational social and personal contribution to student learning.

H.C. Mckown has categorized three stages of development of extra curricular activities. First is the stage when teachers and administrators overlooked it, second stage was in which these were apposed openly, and the third stage is of modern age in which they are supposed to be essential for attaining educational objectives.

In modern times educationists have agreed on this matter that if, these activities are demonstrated properly, they would prove to be great educational importance. Today these are viewed as "co-curricular activities and supposed to be an Integral part of curriculum, which ever experience or activity has educational Importance that is one part of curriculum, so these activities in fact are co-curricular activities.

It is a strong demand of democratic society that its youths should avail laboratory of social experiences in which they may utilize democratic theories taught in classroom, thus the stress may be put on group activities, opportunities of contact between teacher and child and those activities in which child may get democratic experience by participating, objectives of these activities are as under;

*Principal, Columbia College, Raipur, MP

1. To make moral feeling high of total educational programmes of school and its personnel.
2. To provide self-government to students and valuable experiences in the use of democratic processes so that they may have skilled democratic citizenship.
3. To develop the feeling of co-operation and co-existence in the children coming from various atmospheres and to make them one emotionally so that the path of national integration may be made wide.
4. To improve relation of school and society together and to encourage society for taking Interest in Programmes of schools.
5. To help Children for their all round development.
6. To prepare children for proper utilization of their leisure.

Educationists thoughts, student activities have been granted an integral part of curriculum co-curricular activities are defined as a program or out of class activity, supervised and financed by the school, Co-curricular activities are related to curriculum, It is not a part of regular school curriculum, co-curricular activities, are activities that educational organization in some part of the world create for school students.

Importance

The secondary education commission expresses its views Regarding Importance of their activities, that they provide opportunities to children for developing their personal qualities, capabilities, and self- confidence, along with these, they Import training to children in discipline and associate qualification of leadership.

Co-curricular activity of students

For the holistic development of student, extra curricular activities even got much encouragement since the ancient times, ancient scriptures such as Veda, Upanishads, Mahabharata and Ramayana where extracurricular activities were elaborately mentioned, these scriptures discussed about cooking, singing, playing, warfare activities etc. as co-curricular activities .

Now-a-days schools and colleges have been given much more Importance to co-curricular activities so that the hidden potential of students could be harnessed, extracurricular activities helps to develop

creativity and artistic talents among students' great educational thinkers such as Rousseau Spencer and Dewey had advocated the Importance of co-curricular activities so that the hidden potential of students could be harnessed. Co-curricular activities helps to develop creativity and artistic talents among students' great educational thinkers such as Rousseau Spencer and liwey had advocated the Importance of co-curricular activities among students so to develop social relationship Intellectual Intelligence.

Effect of Co-curricular activities on Resume

Co-curricular activities on Resume put a positive effect before the Interviewers. Insertion of co-curricular activities on Resume strengthen your Bio-data when you lack a liquate work experience. If you switch over your career or changes yours job, even in such conditions, Insertion of co-curricular activities in your resume played effective role how to insert and where to put the co-curricular activities on resume is also important.

Co-Curricular Programme and their impact on pupil Development

Educationists say that co-curricular activities help children develop their personality. Co-curricular activities play as Important role in the lives of school students, thus several studies have been conducted in various countries on the status and effects that co-curricular can have on students, co-curricular activities play an Important role in educational, social and cultural Environment of school.

Suggestions

Here, we give some suggestion for make our co-curricular activities more effective in our system-

1- Motivate the children for take part in co-curricular activities.
2- Tell the Importance of co-curricular activities.
3- Every Teacher should be trained in co-curricular activities.
4- Programmes should be conduct that tell the Importance of Co-curricular activities.
5- Organization is lone of which activities in school that should be helpful in supply of school objectives.
6- Before conducting any activity in school, its plan should be made. Constriction of this plan should be lone with the cooperation of students and teacher.

7- Before execution of plan, approval of the headmaster should be taken.
8- To make administration easy and for getting rid lf various struggles these activities should be given place in school time-table so that students and teachers would understand the Importance of these activities also.
9- The accounts of these activities should be maintained in the supervision of teachers, that is with the help of teacher.
10- For conducting organization of some activities successfully Inspection of that is essential to be lone from time to time.

References:

1. Encyclopedia of Educational Research (3rd Vol.) Newyrok : Macmillan Co. 1966, p. 507.
2. Edgar, Galen Jones, Extra Curricular Activities in Relation to the Curriculum in P. B. Jacobson, W.E. Reavis and James D.L. The Effective School Principal Prentice Hall, Englewood Clis, N.J. 1963. p. 275.
3. Govt. of India. The Report of Secondary Education Commission Ministry of Education, New Delhi, p. 126, 207.

*****

The Attitude of Main Political Parties of India Towards Election

Dr. Pravita Tripathi*

India is a democratic country. Political party of our country often discuss and show care of and make policy about the electoral reforms on the occasion of meetings and seminars. Reality is that the care and concern of parties is limited till speech and advertisement. "All the small opposition parties of national level kept on demanding for the electoral reforms 1997 but when these parties but when these party came on authority after changing to government in 1977, they did nothing defined in this direction in there government Janta government had thought on a bill for electoral reforms.[1] "Non communist opposite a parties organized a committee under the leader-ship of V.S. Tarkunde fro electoral reform which could a report a defined period of time to Shree Jai Prakash Narayan to election related reforms through which opposition could put the report before the ruling party of electoral reform programs"[2]

Jagannath Rao Committee : On 18 March 1969 present law minister of people of house Shree P. Nenon promised for amendment in election laws. In 1970 both parts of parts of parliament organized a joint parliament committee of all political parties to passing a proposal in which there were 14 candidates of people of house and 7 candidates were state assembly, In the president-ship of Shree Jagannath Rao four officers of law and just is ministry and two officers of Secretariat were included in it. This committee presented two reports 1st in October 1971/Januray 1972 and 2nd in March 1972. "Committee got that there were some special benefits that representative related index system. And according to it they felt the need means of ratio representations in legislatives. Yet committee did not recommended for it because itself that there will be need of education electors for making this method more effective."[3]

Tarkunde Committee : `In 1974 a Committee of 6 member was organized and the leadership of a retired judge of Mumbai High court tarkunde by Shree Jai Prakash Narayan from the citizen for democracy

*Lecturer, Political Science, A.N.D. NNM College, Harsh Nagar, Kanpu, U.P.

and it's main work was to check the question of money and government authority and misuse of government authority in election. Besides they should have faith to words election commission and all parties and they should be away from doubt.

Necessity of voting : "We have got independent voting right in our election system. The voters of India are free to vote and not to vote. If we leave the voter in there wishes, maximum voter will not caste there votes. Moral motivation is very week for voting. Ordinary voter does not give the importance to parliament democracy. He does not understand that he himself is a base of democracy and his vote can give differences. Maximum person who votes because either they are the opposite of a candidate or a party or they are the under procession of anyone to give there vote in his favor politicians understand this fact well".[4]

Election should be made compulsory for the abolition of the feeling of neutralization towards voting and lust towards politics. First of all the suggestion of principle of compulsory voting had been given by election commissioner shree S.P. Sen in 1968. The neutralized feeling of voters towards election make a joke to election there fore Indian parliament should make the rule of compulsory election. The voter does not take part in election. They have to paid fine. It should not be more then so rupees. It the voter has to present in court for not voting and they will have to pay tine for it, they will think many time before showing neutralization in election."[5]

The percentage of voting will sure increase by compulsory voting. Where as the percentage of voting remains percent in the election of people of houses in present time.

"This logic is given for compulsory election that when all people have compulsory political right for voting if they are adult. It is a legions to not obeyed possibly to force anyone for voting is against democracy but by compulsory voting is a help of popular government and help in punishment. Compulsory voting is one side the right of a person and other side it is a duty. And it should be implemented by the government because it is beneficial for all society."[6]

Required result will get in case of compulsory voting unless person gets the desire to take part in the process of democracy and he does not understand it, any type of necessity of voting can not be success. We should live it from the wisdom of the people weather they vote or not according to the circumstances of India. Recently Supreme Court has given a important decision on the necessity of voting of the precedent in elections that voting or nonvoting is a free right of voters."[7]

Now a new decision has started that even elected candidate do not want necessity in voting it is useless to discuss the necessity voting for common voters. There is a need of this thing that there should be compulsory voting for elected candidates.

Suggestions for the reform in election process : To stop the fake voting planning of providing photo identity card should be try to provide to the voters by the government it will also help to check the irregularities of voter list.

State legislative assembly election, village assembly election, Nagar Nigam election will also be done by electronic voting machines machine.

During election period any misuse of government system by ruling party should be stopped

Conclusion : Now we should understand clearly that there only people have the last solution for election reforms and today there. Is a need of improvement in the character of the people now the voter must know that the candidate elected by them is working properly or not if they one elected for serving but they are enjoying the luxuries what should we do then? They elected for work but they are collecting money in place of work then the people remain as lance audience. Common people understand that we can not terminate the candidate if ones he is elected now he is free to what even they like wining candidates think that they are free to do even thing this tendency should be broken by the voters and the political parties should change there working style and they should work for those principles of our country on which our country and unity can proud they should adopt such types of role.

References :

1. Kashyap Subhash –Our Parliament, P. 59, 1996. Public Representative act, 28th section of 1950.
2. Goswami balchamdra- Condition and direction of electoral reforms in India, P.11, 2003
3. Published – Nai Duniya, a March 2005
4. Documents Monthly, volume 07, Number 12, Election Indian Government, Dec 1986, P. 206
5. Amar Ujala, Published, 17 July, 2007
6. Report of Nittal Nemisharan – Problem of Indian politics Groups, P. 65
7. Inspection of democracy – Jan – Dec 1988, P. 102

*****

Domestic Violence Against Women's in India: A Study

Rakesh Choudhary*
Manish Kaithwas**
Gaurav Rana***

Abstract

Domestic violence is a very well known and most frequent towards women's in India. Domestic violence against women is understand as a situation supported and reinforced by gender norms and values that place women in a subordinate position in relation to men .This study reviles the presence of domestic violence in Indian women's. An interview schedule was prepared to assess the prevalence of domestic violence. 50 women's of lucknow were interviewed to get adequate result. The study showed that alcoholism of husbands is one of the main causes of domestic violence against women's. The result showed that Domestic violence is still prevailing in the Indian society and women's are very less aware of the laws and organizations dealing with domestic violence. The study showed that alcoholism of husbands is one of the main causes of domestic violence against women's.

Introduction

In the chequered history of mankind one finds that different and disparate cultures, however distant they may be in time and space have at least one thing in common and that is the contempt of women. However, the Gandhian era and the decades after independence have seen tremendous changes in the status and the position of the women in the Indian society. The constitution of India has laid down as a fundamental right- the equality of the sexes. But the change from a

*Department of Social Work, University of Lucknow, U.P.
**Department of Social Work, University of Lucknow, U.P.
*** Department of Commerce, Delhi School of Economics, University of Delhi, Delhi

position of utter degradation of women in the nineteenth century to a position of equality in the middle of the twentieth century is not a simple case of the progress of men in the modern era. The position of women in the Indian society has been a very complicated one. In fact, it could not be an exaggeration to say that the recent changes in the status of women in India is not a sign of progress but it is really are capturing of the position that they held in the early Vedic period.

Yet, the status of women who constitute almost half of the Indian population is not that encouraging. Gender based violence – including rape, domestic violence, mutilation, murder and sexual abuse- is a profound health problem for women across the globe. Nonetheless, it is not considered as a public problem of serious concern.

The various forms of physical violence are:-

- Female foeticide and female infanticide.
- Incest, connivance, and collusion of family members to selfish, sexual abuse, rape within marriage.
- Physical torture like slapping punching, grabbing, murder.
- Overwork, lack of rest, Neglect of health care.

Violence against women has been clearly defined as a form of discrimination in numerous documents. The World Human Rights Conference in Vienna, first recognised gender- based violence as a human rights violation in 1993. In the same year, United Nations declaration, 1993, defined violence against women as "any act of gender-based violence that results in, or is likely to result in, physical, sexual or psychological harm or suffering to a woman, including threats of such acts, coercion or arbitrary deprivations of liberty, whether occurring in public or private life". (Cited by Gomez, 1996) Radhika Coomaraswamy identifies different kinds of violence against women, in the United Nation's special report, 1995, on Violence against Women;

Research Methodology

Research Hypothesis

- There have been efforts to eliminate domestic violence and the associated effects, though some initiatives have been less productive.
- Awareness on the issues relating to domestic violence can help the victims know their rights and also reduce the level rate of the problem.

Research Design

Descriptive research design has been used in this study.

a) Universe

Women respondents of Akbar nagar area of Lucknow formed the universe and geographical area of the study respectively.

b) Sampling

Sampling is done on random bases where a survey is conducted on the women's of Akbar nagar area of Lucknow. The data is collected purely on random bases.

Tools and Techniques of Data Collection

Interview Schedule

The interview schedule which formed the major tool was catered to the women's to draw information from them. This comprised mainly the personal data of the women's, their profile, type of violence, its reasons, nature, manifestations, frequency and consequences.

Sources of data

a) Primary Data

The respondents viz. the women's of Akbar Nagar area of Lucknow constituted the Source of primary data.

b) Secondary data

Documents, books, reports of surveys and studies, literature pertaining to domestic violence and other relevant publications formed the secondary data source.

CONCLUSION

The findings derived from the data gathered from the women living in the Akbar nagar area of lucknow city are scripted below (survey on 50 women's):

- The study reveals that 20% of the respondents are being hurt physically by their in-laws/family members.
- 34% of the respondents are mentally hurt by their in-laws/ family members.
- 32%of the total respondents faces problem of physical violence by their husband.
- 44% of the total respondents faces mental violence by their husbands.
- 10 % of the respondents were denied of their basic needs.
- 44%of the respondents faces mental depression as a consequence of domestic violence.

- Basic needs are very badly affected of 50% respondents facing domestic violence.
- 48% of the respondent's children's education is very badly affected by domestic violence.
- 76%of the respondents are not aware of laws related to domestic violence.
- 94% of the respondents are not aware of any organisation/ individual addressing domestic violence.

The study shows that domestic violence on women's is still prevailing in Akbar Nagar Area, Lucknow.

Suggestions

The recommendations highlighting the roles/services of various sections for reducing the occurrence and prevalence of domestic violence are scripted below under the major heads: Judiciary, Government, Police, NGOs, Health care support, Counselling, Awareness Generation &Sensitization, and media.

References :

1. Althreya U.B., Sheela Rani and Chukath "An Indian Mother Expendable," The Hindu; dated 7th January 1996.
2. Ahuja R. "Crimes against women" Rawat Publication, Jaipur; 1987.
3. Anveshi. *"Women in India and their mental Health"*,Hyderabad;1995.
4. International Centre for Research on Women (ICRW*), Domestic Violence in India"*, Washington, DC; May 2000.
5. Jain R.S. *"Family Violence in India"* Radiant, New Delhi; 1992.

*****

Value Education in Indian Wanghmay

Rajesh Kumar Sharma*

Abstract: In this paper I would analyze the values and value education being the need of the day. Values give meaning and strength to an individual's character. . This paper presents that teachers and parents would aware of importance of value education in children & their role in it. So this paper advocates that values of teacher education needs a total qualitative transformation as educational theory, pedagogy, training methods organization & administration. This paper also points out that the essence of value education is to enable children to be aware, to think and to reflect, to question & to criticize. The paper so advocates that taking the problem of present time, teacher training should enable teachers to broaden their understanding of school subjects & look at them in a holistic manner and not just as a body of cold facts. A review of literature on value education and a critical analysis of recent trends are presented in this paper.

Key words: Value, education, teacher education, character development.

Introduction: The high level of development of modern science and technology, the constantly increasing impact of human economic activity on the environment. The country now stands that many current problems as social, political & cultural situations resulting in violence and destruction under this circumstances, the need for value-oriented education is emerging specially in India. At this time we have gradual erosion of values, which is reflected in day to day life. Our young generations have negative aspects of western culture. Truth, peace, non-violence, is the core universal values which can be identified as the foundation. These are universal values and represent the five domain of human personality, intellectually, physical, emotional, psychological & spiritual. The ideals contained in the constitution are socialist, secular, democratic, justice, liberty, equality, dignity of the individual and integrity of the nation.

*Research Scholar, Monad University, Hapur, U.P.

Objectives of the study:

The researcher has conducted his study on the basis of following objectives;-

1. To explain the role of social, moral, cultural values and other human values in our life.
2. To study the value education as the top most need of the day.
3. To study the role of great thinkers/spiritual books and their importance in educational values.
4. To analyze the factors responsible for decline in teaching values and quality of education.
5. To examine the relevancy of value education in present education system.
6. To study the role of teachers in the society.

Meaning of term value: Values means primarily to prize, to esteem, to appraise, to estimate. A values stands for ideas men live for. The term value literally means "**to be of worth"** just as the prize. We today use the term-value as **literary value, democratic value, life value, .values** are abstract and multidimensional and present an ideal for the members of the society to shape their personalities. **In the words of John Dewey "the value means primarily to prize, to esteem, to appraise and to estimate. It means the** act of achieving some thing.

Categories of values: Value may be categorized as follows-

- **Intellectual values:** knowledge, divergent & convergent thinking, critical observation, inquiry& investigation, imaginative &creative thinking, scientific attitude& critical observation.
- **Moral values:** Devotion to duty, self control, honesty, sincerity, patriotism.
- **Personal values:**honesty, self worth, sincerity, truth, cooperation self worth regularity.
- **Social values:**punctuality, good manners, art & culture respect, co-operation, tolerance.

Why values and value education are needed? There has been a rapid deterioration of ethical and moral values in the Indian society. . This wide scope concept of value education will help us to develop knowledge, skills &attitudes necessary for protecting. It will also help us to understand the interrelatedness of man with nature.

Process of value education : Generally in India genuine knowledge is considered to be the result of listening (sravana) thinking or reflecting (manana) and then making it a part of one's personality (nidhidhyasana).Then it is said that three ought to be a congruence between mana, vacahan and karma etc between what one thinks, what one speaks, & what one does.It is said that knowledge leads to awareness, awareness builds right perception and attitude which leads to action.

Values in ancient India &Present scenario: In ancient India value education known as cultural education or moral education or ethical spiritual education India it was called Dharma. In ancient India, Vedas the Upanishads, the epics manifested and upheld the values of Indian society. More importance was given to morality honesty, duty, truth, friendship, brotherhood etc. They were the themes of Indian culture & society. But in the present scenario due to the many changes in various aspects of our civilization such as population explosion, advancement in science and technology, knowledge expansion, rapid industrialization mobilization privatization and globalization as well as the influence of western culture. Now a days present society has became highly dynamic modernization process in accompanied with multifold problems and anxieties growing global poverty, pollution, hunger, disease, unemployment unsociability, caste system child labour, gender inequality violence disability & many such evils have caused value crisis on the globe. To bring quality of life and sustainable development in the society.

Value education as the top most need of the country today: Value education starts not with the student but with the teacher. If the student has to be taught values, 'first the teacher has to taught values, and the teachers' value training programme should be given top priority for the success of value education. This is because the student learns values mainly from the actual behaviour of the teacher who lives the values himself.

The purpose of this paper, as the very title suggests is to present a programme proposal for the teaching of educating the teachers and parents with regard to the value education of students The purpose is also to point out the theory or philosophy that works behind ;this programme. So that we may become clear as to what are the conceptual grounds upon which the programme of value education is based.

Role of great thinkers/spiritual books and their importance in educational values: Values and morality are the integral components of all religions. They are so closely interrelated with each other that many thinkers and philosophers hold them to be inseparable.

Role of teachers for value education: Ravindra Nath Tagore said that "The aim of education is to make spiritual development. So values are the basis for the social intellectual, emotional, spiritual and more development of an individual .The role of teachers need to be determined not only in the context of promoting **values but also is that of providing more effective methods of education. Because** according to **Manu "A teacher is the image of Brahma**". So teachers should not only be good in teaching but also be a good citizen possessing moral and aesthetic values..

Good teacher +Good student= Good Nation : Teacher can use the literatures to shape the lives of children with a vision for themselves and for the nation. A pupil learn more from what a teacher is and does than from what a teacher teaches . Teachers can be classified into three categories (1) complaining teacher (2) explaining teacher (3) inspiring teacher.

Good teacher +Good parents = Good student : The term teacher has a wide connotation. It means not only the school teacher but also the parent the guardian, the religious and spiritual quarrel and other such elders who tend to give an impact on the formation of the personality of the student. So for the value training of the student. It is warranted that the should be co-ordination and collaboration among all such teachers. To save the time & energy of the teacher . It is advisable that the teacher need not all the time visit the parents.

CONCLUSION: The process of identifying the social, cultural and personal challenges are important steps, unless we know clearly what our obstacles are both internally and from the social, political and economic environment we can not be realistic in our development of values. This important ingredient has often gone missing from programmers that seek to teach values and has contributed to their luck of success.

This paper set out to provide a practical frame work for the large scale implementation of a national value education programme. It has agreed that the purpose of value education is personal and social transformation and that such transformation requires both a clear vision of the kind of society we want to create and kind of

individual all want to produce and an understanding of the processes of personal and social transformation. It is hoped that, the frame work described in this paper will stimulate thinking and action in this direction if value education is made the core process of the educational system and if the elements described above begin to be implemented on a large scale this will result in a fundamental charge in the process of education it self. In a nut shell it can be concluded that education with out vision is waste, education without value is crime and education without mission is life burden. A nation with atomic power & technology with people with strong character is indeed a strong nation. So there is a need of value based education spiritual education ethical education as well as need based education.

So, in the and we may point out that the prospects of value equation in our country are bright. The course of value education of course, solve the value crisis will not end overnight. But if sincere effort is made in this direction and if the work is started nationwide, we will soon become a change nation.

References:

1· Bush, M.B. (1979); second survey report of education society for educational research & development, Baroda Ahmadabad - 380009.

2· Bush, M.B.(1983-88); Fourth Survey of research in education vol. published by the population department by the secretary N.C.E.R.T. Sri Aurobindo Marg, New Delhi

3· Mondal; Ajnit: university news, 51(52) December 30, 2013 - January 05, 2014.

4· Mishra, Kamalakar; Value education, A suggested programme for Teachers and Parents, Journal of value education volume 3, January 2003.

5· Pathanja; Anita; University news 49(21) May 23-29- 2011.

6· Rajput, J.S; values in the context of school education in India, Journal of value education July 2002.

7· http://educaditon.nic.in/elementary/elementary. asp

8· Singh, Y.K. "education in emerging Indian society" APH Publishing House corporation , New Delhi 110 002.

*****

Goods and Services Tax (GST)-A step forward (A Fantasy Evaluation)

Dr. Lal Baboo Jaiswal*

Abstract : Convincing taxes are usually employed to simplify tax procedure particularly to relation to compliance burden on taxpayers with very low turnover and the corresponding administrative burden of auditing such taxpayers. **Convincing** taxes were started in India with the passing of the finance Act 1997, which made the **Convincing** taxation operative retrospectively from the assessment year 1994-95 for business dealing with civil construction, hiring leasing or plying goods carriage and later for retail businesses

What is GST? : In 2000, **Vajpayee Government** started discussion on GST by setting up an empowered committee. The committee was headed by **Asim Dasgupta,** (Finance Minister, and Government of West Bengal). It was given the task of designing the GST model and overseeing the IT back-end preparedness for its rollout.

Keeping this overall objective in view, an announcement was made by Palaniappan Chidambaram, the Union Finance Minister, during the central budget of 2007–2008 that it would be introduced from April 1, 2010 and that the Empowered Committee of State Finance Ministers, on his request, would work with the Central Government to prepare a road map for introduction of GST in India.

As a GST-registered business, it collect GST on behalf of the Government by building it into the prices of the products and services, and then we claim GST back on the products or services we've bought as business expenses. If we're not GST-registered, we can't do this.

GST stands for Goods & Service Tax. It's a tax built into the price of virtually all products or services you can buy or sell. GST is set at 15%.

So the basic principle of GST is we end up paying Inland Revenue the difference between the GST we collected on what we

*Assistant Professor, Faculty of Commerce, B.H.U., Varanasi, UP

sold and the GST we paid on the supplies we bought for our business by filing regular GST returns with Inland Revenue throughout the year. Our GST returns will show that we either have GST to pay or we will be receiving a GST refund.

There are **four** types of GST

1. Supplies
2. Taxable
3. Exempt Zero-rated
4. Special.

Key words:

Goods and service tax, GST elsewhere, Value added tax period (VAT), the advent of GST

Goods and Services Tax (GST) -A step forward

What are the benefits of GST?

Under GST, the taxation burden will be divided equitably between manufacturing and services, through a lower tax rate by increasing the tax base and minimizing exemptions.

It is expected to help build a transparent and corruption-free tax administration. GST will be is levied only at the destination point, and not at various points (from manufacturing to retail outlets).

Currently, a manufacturer needs to pay tax when a finished product moves out from a factory, and it is again taxed at the retail outlet when sold.

How will it benefit the Centre and the States?

It is estimated that India will gain $15 billion a year by implementing the Goods and Services Tax as it would promote exports, raise employment and boost growth. It will divide the tax burden equitably between manufacturing and services.

What are the benefits of GST for individuals and companies?

In the GST system, both Central and State taxes will be collected at the point of sale. Both components (the Central and State GST) will be charged on the manufacturing cost. This will benefit individuals as prices are likely to come down. Lower prices will lead to more consumption, thereby helping companies.

GST to a different place

More than 150(J.K.MIttal 2010) countries have introduced GST in some form. It has been a part of the tax landscape in Europe for the past 50 years and is fast becoming the preferred form of indirect tax in the Asia Pacific region. It is interesting to note that there are over 40 models of GST currently in force, each with its own

peculiarities. While countries such as Singapore and New Zealand tax virtually everything at a single rate, Indonesia has five positive rates, a zero rate and over 30 categories of exemptions. In China, GST applies only to goods and the provision of repairs, replacement and processing services. It is only recoverable on goods used in the production process, and GST on fixed assets is not recoverable.

The all-new Cenvat Credit Rules, 2014 do little to clarify eligibility for input credits by using general terms such as " any goods which have no relationship whatsoever with the manufacture of a final product" and " services used primarily for personal use or consumption of any employee". Before penning the GST Act and Rules, the Empowered Committee would do well to take a hard look at all the present laws that GST subsumes and their complexities. It could tempt them to rethink on the necessity to draft even the preamble

This change in the tax structure is going to have a huge impact in the currently supply chain of India. It is currently in sub-optimal and has been structured in such a fashion to avoid taxes. The supply chain tax structure of India can be broadly classified in the following categories.

Local sales tax period (Maximize CST movement)

- The system based on the efficiency of tax and not on logistics efficiency
- Ware houses places at borders to serve markets in other states
- Good sent in a roundabout matter increasing logistics cost but saving local taxes
- The figure shows the process pictorial. It makes the process complex to overcome the local taxes which used to be very high and CST was less.

Value added tax period (VAT)

- The main aim was to save the interstate sales tax, CST which was not recoverable.
- VAT can be set-off, CST cannot be.
- This led to the increase in the number of warehouses.
- Almost every state where you are selling must have a warehouse.
- Due to this their size reduced
- This led to higher movement of goods leading to an offsetting of the gains.
- Reduced the usage of large hubs and higher haulage trucks

- Demand variability increased due to the large number of hubs
- This led to locking-up of high capital in inventory
- The holding cost increased due increase in number of stores.

The general mechanism in which the material was being transferred in different states is shown pictorially below. This gives a clear indication that inter-state sales were avoided to save the CST. Finished goods are sent to godown/warehouse/depots in the state in which the finished good has to be sold. This has led to creation of a lot of small depots which are not operationally efficient. 122

The advent of GST : GST will bring about a change on the tax firmament by redistributing the burden of taxation equitably between manufacturing and services. It will lower the tax rate by broadening the tax base and minimizing exemptions. It will reduce distortions by completely switching to the destination principle. It will foster a common market across the country and reduce compliance costs. It will facilitate investment decisions being made on purely economic concerns, independent of tax considerations. It will promote exports. GST will also promote employment. Most importantly, it will spur growth.

References :

1. http://goodsandservicetax.com/gst/showthread.php?79-Executive-Summary-(Report-of-Task-Force-on-Implementation-of-GST)&goto=nextnewest
2. http://www.taxmanagementindia.com/wnew/detail_rss_feed.asp?ID=1226
3. http://www.123gst.com/introductory-resources/first-discussion-paper-on-goods-and-services-tax-in-india/frequently-asked-questions-faqs/09-dual-gst
4. "Modi to quit as GST panel head today". 16 June 2013. Retrieved 17 June 2013.
5. "Post Sushil Modi, GST Committee will have to find new chief". 16 June 2013. Retrieved 17 June 2013.
6. "Modi in, Modi out: Splitting headache for UPA on GST". *Firstpost*. 17 June 2013. Retrieved 17 June 2013.
7. http://profit.ndtv.com/news/show/gst-rates-to-be-in-range-of-16-20-cbec-162035?cp
8. http://www.thehindubusinessline.com/todays-paper/tp-others/tp-taxation/article2286103.ece
9. http://www.gstindia.com

*****

Indian Rural Banking

(Emerging Trends and Challenges Role of Regional Rural Banks)

Dr. Rajay Kumar Singh*

Abstract :

After independence, the major aim of rural credit policy in our country has been to expand of institutional financing with a view to curtail the role of indigenous financial agencies like moneylenders. The All–India Rural Credit Survey Committee (AIRCSC) perceived that only multi-purpose co-operatives can be a viable solution to the problem of rural finance.

Introduction:

The Narasimham Committee on rural credit recommended the establishment of Regional Rural Banks (RRB) on the ground that they would be much better suited than the commercial banks or co-operative banks in meeting the needs of rural areas. They would combine the local feel and familiarity with rural problems which cooperative possess and the degree of business organization, ability to mobilize deposit, access to central money markets and modernized outlook which the commercial banks have.

On Narasimham Committees recommendation, the Government passed the Regional Rural Banks Act, 1976. The main objective of RRB is to provide credit and other facilities particularly to small and marginal farmers, agricultural laborers, artisian and small entrepreneurs and develop agriculture, trade, commerce, industry, and other productive activities in the rural areas.

The first five RRB were set up on October 2 1975, at Moradabad and Gorakhpur in Uttar Pradesh, Bhiwani in Haryana, Jaipur and Rajasthan and Malda in West Bengal. These banks were sponsored by the Syndicate Bank, State Bank of India, Punjab National Bank, United Commercial Bank and United Bank of India.

*Assistant Professor, Faculty of Commerce, R.G.S.C. Barkachha

Role of Regional Rural Banks (RRB) in the Present Scenerio:

Co-operative Banks are much more important in India than anywhere else in the world. The distinctive character of this bank is service at a lower cost and service without exploitation. It has gained its importance by the role assigned to them, the expectations they are supposed to fulfill, their number and the number of offices they operate. Co-operative banks role in rural financing continues to be important day by day, and their business in theurban areas has increased phenomenally recent years mainly due to the sharp increase in the number of primary co-operative banks. In rural areas, as far as the agricultural and related activities are concerned the supply of credit was inadequate and moneylenders would exploit the poor people in rural areas providing them loans at higher rates. Therefore, co-operative banks mobilize deposits, purvey agricultural and rural credit with a wider outreach, and provide institutional credit to the farmers. Co-operative banks have also been important in strumpets for various development schemes, particularly subsidy based programmes for poor. The Co-operative banks in rural areas mainly finance agricultural based activities like; Farming, Cattle, Milk, Hatchery, Personal finance. The Co-operative banks in urban areas finance to activities like; Self-employment, Industries, Small Scale Units, Home finance, Consumers finance, Personal finance, Social Services-Health, Education etc. Some of the forward-looking Co-operative banks have developed sufficient competencies to such an extent that they are able to challenge state and private sector banks The exponential growth of Co-operative banks were attributed mainly to their much better contacts with the local people, personal interaction with customers and their ability to catch the nerve of the local clientele. The total deposits and lending of Co-operative banks are much more than the old Private Sectors Banks and the New Private Sector Banks.

Structure and Organisation of RRB :

The authorized capital of RRB is fixed at Rs. 1crore, and its issued capital at Rs. 2 lakhs. Of the issued capital, 50% is to be subscribed by the Central Government, 15% by the concerned State Government and the rest 35% by the sponsoring bank.

The working and the affairs of the RRB are directed and managed by a Board of Directors. The Board of Directors consists

of chairman, three directors to be nominated by the Central Government concerned, and not more than 3 directors to be nominated by the Central Government and his term of office does not exceed five years.

Problems Faced by RRB:

1. Haste and lack of coordination in branch expansion.
2. Difficulties in deposit mobilization.
3. Constraints in deposit mobilization.
4. Slow progress in lending activity.
5. Urban orientation of staff.
6. Procedural rigidities.

Suggestion for Reorganisation and Improvement in the Working of RRB:

1. The unique role of RRB in providing credit facilities to weaker sections in the villages must be preserved. The RRB should exist as rural banks of the rural poor.
2. The RRB may be permitted to lend up to 25% of their total advances to the richer section of the village society.
3. The State Government should also take keen interest in the growth of RRB.
4. Participation of local people in the equity share capital of the RRB should be allowed encouraged.
5. Local staff may be appointed as far as possible.
6. Cooperative societies may be allowed to sponsor or co-sponsor with commercial banks in the establishment of the RRB.
7. The RRB may relax their procedure for lending and make them more easy for village borrowers.
8. Co-ordination between district level development planning and district level credit planning is also required in order to chart out the specific role of the RRB as a development agency of the rural areas.

Recommendations of the Different Committees on RRB:

1. Dantwala Committee 1977.

2. Narasimham Committee 1991.

3. Khusro Committee.

Conclusion:

RRB is mainly established to solve the problem of the weaker section of the society and also to settle various problems which cooperative and business organization faces. With the help of this research paper an attempt is made to throw light on the working, problems and role of RRB in this context with some suggestion.

Co-operative banks take active part in local communities and local development with a stronger commitment and social responsibilities. These banks are best vehicles for taking banking to doorsteps of common people, unbanked people in urban and rural areas. Their presence in the social, economic and democratic structure of the country is essential to bring about harmonious development and that perhaps is the best justification for nurturing them and strengthening their base. These banks are sure to win the race because they are from the people, by the people and of the people .Urban Co-operative Bank is very important role for the sustainable development of India. UCBs through various facilities provided to the society. This bank has also financially helped for various sectors. i.e. Education, Health, Social Work, Agriculture, Rural Development, Wedding Function, Cottage and Small Scale Industries, Retail Traders, Wholesale Trade etc. The banks also finance the weaker sections

References:

1. Banking and Financial System–Sundaram and Varshney–Sultan Chand and Sons–2005.
2. Banking and Financial System-Mithani and Gordon–Himalaya Publishing House–2005.
3. Mathur B. S. (1977), Co-operation in India, Sahitya Bhavan, Agra, 3rd Edition.
4. American Economic Association
5. Asia-Pacific Economic Co-operation

*****

Use of Sources by Research Scholar of Allahabad Central University Library: A study

Sugriv Singh*
Dr. M.P. Singh**

Abstract : Now in present days information has become basic need like meal and water. In present scenario no one can growth without information. The study is an evaluation of library resources provided by Allahabad Central University Library. The study examined Gender-wise breakup of Researchers, Purpose of Using the Library, Frequency of visiting the Library, Information resources provided by the Library, Reference Sources provided by the Library, Interest of Researchers visiting the Library, Opinion of Research Scholars towards Library resources and also some related aspects.

Keywords: Information, information resources.

Introduction : Universities are the institutions of higher education. It is true that universities are playing role for education and research. Now they have become institutions where knowledge discovered. Libraries of higher education institutions play a vital role in research and development. In the same way success of any research depend upon the resources and services provided by the library.

This study is an evaluation of library resources provided by Allahabad Central University Library. For the present study 300 structured questionnaires were distributed and 210 returned after filling. After collecting the questionnaire analysis make to know the status of library under the study; and also to identify the resources are being provided to the users.

*Research Scholar, Department of Library and Information Science, Uttar Pradesh Rajarshi Tandon Open University, Allahabad
**Associate Professor, Department of Library and Information Science, Babasaheb Bhimrao Ambedkar (A Central University), Lucknow

About the University : Allahabad University is one of the premier Central University located in Allahabad, Uttar Pradesh. Its origins lie in the Muir Central College, named after Lt. Governor of North-Western Provinces, Sir William Muir in 1876, who suggested the idea of a Central University at Allahabad, which letter in evolved to the present University, and at one point it was even called, the "Oxford of the East" and on June 24, 2005 its Central University status was restored through the 'University Allahabad Act, 2005', of the Parliament of India. The Allahabad University Library takes pains to meet user needs by providing user- focused services, with more than 6,53164 books, 15,355 PhD thesis, 552 current journals, 11036 on-line journals, 17 databases, 28 current popular magazines, 20 news papers and many collection of rare books[1].

Objectives of the Study :

- To study about the information resources provided by library for research work
- To identify the reference resources provided by the library
- To identify purpose of researchers to use the library
- To identify the frequency of visiting library by the research scholars
- To investigate interest of research scholars for visiting library.
- To know the opinion of research scholars regarding library resources.

Review of related Literature : Robinson's (2010)[2] suggests that when seeking information at work, people rely on both other people and information repositories (e.g., documents and databases), and spend similar amounts of time consulting each (7.8% and 6.4% of work time, respectively; 14.2% in total). Furthermore, the research found that people spend substantially more time receiving information passively. Tenopir, et al., (2009)[3] Study found that the average number of readings per year per science faculty member continues to increase, while the average time spent per reading decreases. Vezzosi, (2009)[4] the study was carried out with Nearly all the doctoral students reported that the internet is their first and favourite point of access to any type of information and majority of them are using scirus and science direct for their information needs. Jamali, et al., (2008)[5] investigated two aspects of ISB of Physicists and Astronomers at University

College, London. 47.1% responded in this study are satisfied from library services.

Scope of the Study : The present study has concentrated to make the survey of library resources required by the research scholars.

Research Methodology : IThere are three basic tools adopted for obtaining the data through survey method i.e. questionnaire, interview and observation. Investigator has prepared two questionnaires; one for the research scholar to know their information needs and other for the Librarian to know information about library collection, services etc. After collecting the data, investigator has created a database all the entries made by the research scholar have been keyed in the database. The database has been analyzed in different angle to understand the scenario of the field of interest.

Data analysis and interpretation

The data analysis and interpretation of the study are as follows:

Table- 1 Gender-wise breakup of Researchers

Gender	No. of Research Scholars	Percentage
Male	149	70.95
Female	61	29.05
	210	100.00

The above table indicate. It is remarkable that the percentage of female respondents is not in sufficient level in the comparison of male respondents.

Table- 2 Frequency of visiting the Library

Frequency	No. of Research Scholars	Percent
Daily	104	49.52
Weekly	38	18.10
Fortnightly	8	03.81
Monthly	13	04.19
Occasionally	43	20.48
Rarely	4	01.90
	210	100.00

Frequency of users highlights that a total of 210 respondents out of 104 (49.52%) respondents visited the library on daily routine.

Table- 3 Purpose of Using the Library

Purpose of using Library	No. of Research Scholars	Percent
Academic	63	30.00
Research	163	77.62

Scholarly Writings	62	29.52
Self Knowledge	59	28.05
Prescribed Course	20	09.52
Recreational	11	05.23
Reference and Information	40	19.05
Any Others	04	01.90

Purpose of using library by research scholars depicts that 63 (30.00%) respondents were mentioned their purpose as academic work, 163 (77.62%) mentioned about Research, 62 (29.52%) for while only 04 (01.90%) visited the library for other purposes.

Table- 4 Information resources provided by the Library

Type of Information Sources	No. of Research Scholars	Percent
Books	182	86.67
Periodicals/Journals	167	79.82
News Paper	126	60.00
Press Cutting	29	13.81
Thesis/Dissertation	74	35.24
Reference Books	84	40.00
Documents	40	19.05
Microfilms	03	01.43
Microfiches	04	01.90
Atlas/Maps/Globe	22	10.48
Statistical table	15	07.14
Proceeding of Conference/Seminar	53	25.24
Patents/Standards	5	02.38
Research reports	47	22.38
Library acquisition lists	34	16.19
Survey articles	16	07.62
Official documents	14	06.67

Through the above table it is find that only 14 (06.67%) respondents are interested in official documents.

Table- 5 Reference Sources provided by the Library

Type of Reference Sources	No. of Research Scholars	Percent
Dictionary	134	63.81
Encyclopaedia	150	71.43
Gazetteers	29	13.81
Biographical Sources	47	22.38
Bibliographical Sources	59	28.10

Geographical Sources	24	11.43
Year book/Almanacs	45	21.43
Hand books/Manuals	52	24.76
Directories	35	16.67
E-Resources	47	22.38
Audio-Visual Sources	8	03.81

Analysis of reference sources describes that 134 (63.81%) responders are interested in dictionary to use as reference source.

Table- 6 Interest of Researchers visiting the Library

Interest	**No. of Research Scholars**	**Percentage**
Interested	198	94.29
Not Interested	12	05.71
	210	**100.00**

Total numbers of 198(94.29%) respondents are interest to visit the library that is highest and only 12 (05.71%) respondents not interested to visit to library.

Table- 7 Opinion of Research Scholars towards Library resources

View of Research Scholars	**No. of Research Scholars**	**Percent**
Up to100	12	05.71
Up to 90	27	12.85
Up to75	76	36.19
Up to 50	64	30.48
Up to 25	22	10.48
Less than 25	09	04.29
	210	**100.00**

Researchers up to 75 gives response that 76 (36.19%) is the highest rank whereas up to 50 with 64 (30.48%) is in the second position and only ranked up to 90 gives response 27 (12.85%).

Major Finding :

1. It is found that a total of 210 out of 198 (94.29%) are interested to visit the library.
2. It is observed that almost 50% research scholars visit the library daily.
3. It is found that Books, Periodicals/Journals and news papers are used by most of the research scholar.
4. It is found that most of the researchers go library for their research work.

Conclusion

The study reveals that the library is used regularly by research scholars. While there are significant level of use and satisfaction towards available resource is satisfactory with response rate 76 (36.19%); research scholars also clearly expressed they want go the library for use more literature and information sources with response rate 198 (94.29%). In this way the study will help full for library and information science students, research scholars as well as academicians who want to identify use and impact of library resources.

References :

1. Allahabad University. (n.d.). Retrieved December 10, 2013, from www.allduniv.ac.in/: http://allduniv.ac.in/
2. Robinson, M. A. (2010). An empirical analysis of engineers' information behaviors. Journal of the American Society for Information Science and Technology, 61(4), 640–658. http://dx.doi.org/10.1002/asi.21290.
3. Tenopir, Carol, et al. (2009). Electronic joumals and changes in scholarly article seeking and reading patterns. Aslib Proceedings: New Information Perspectives. 2009, Vol. 61, I, pp. 5-32.
4. Vezzosi, Monica. (2009). Doctoral students' information behaviour: an exploratory -study at the University of Parma (Italy). New Library World. 2009, Vol. I10, I/2, pp.65-80.
5. Jamali, Hamid R. and Nicholas, David. (2008). Information-seeking behaviour of physicists and astronomers. Aslib Proceedings: New Information Perspectives. 2008,Vol. 60, 5., pp. 444-462.
6. Qureshi, Tahir Masood, Iqbal, Jawad and Khan, Mohammad Bashir. (2008).Information needs & information seeking behaviour of students in Universties of Pakistan. Journal of'Applied Sciences Research. 2008, Vol. 4, l, pp. 40-47.
7. George, Carole, et al. (2006). Scholarly use of information: graduates student's information seeking behaviour. Iigformation research. [Online] June 13, 2006. [Cited:October 13, 2007.] http://InformationR.net/'ir/ll-4/paper272.html.

*****

Feminist Some Great Thinker's of Indian Origin

Dr. Rahul Gupta*

The feminist theory in Asia has found its supporters in some great thinkers such as Uma Narayan and Gayatri Chakravorty Spivak. Here I discussed only Uma Narayan contribution in feminism.

Uma Narayan is a well acclaimed feminist scholar of Indian origin. She is the author of *'Dislocating Cultures: Identities, Traditions and Third World Feminism'* which is considered to be an important book on Third World Feminism.

Narayan describes the challenges of defining oneself intellectually and politically as a Third-World feminist. She argues that feminist perspectives are not 'foreign' to Third-World national contexts. However, she says that the mainstream feminists have always projected us as occupying a suspect location and they view their perspectives as suspiciously tainted and problematic products of our "Westernization".[1]

She confesses that having lived on and off in India and other Western countries makes her situation problematic when she tries to call herself as a Third World feminist. However, she asserts that one can be called as a Third World feminist even if he/she is not living/ confined only within the borders of Third World countries.

Thus, Narayan makes clear that one can be called a Third World feminist even by living physically/geographically in non Third World countries. She gives three personal reasons in *Dislocating Cultures* to be called herself as a Third World feminist:

First, having lived the first quarter-century of my life in Third-World countries, and having come of age politically in such contexts, a significant part of my sensibilities and political horizons are

*Assistant Professor, Department of Sociology, M.G.K.V.P., Varanasi, U.P.

indelibly shaped by Third World national realities. Second, this essay is an attempt to explicate the ways in which the concerns and analyses of Third-World feminists are rooted in and responsive to the problems women face within their national contexts, and to argue that they are not simpleminded emulations of Western feminist political concerns. I need to speak "as an insider" to make my point, even as I attempt to complicate the sense of what it is to inhabit a culture. Finally, though calling myself a Third-World feminist is subject to qualification and meditation, it is no more so than many labels one might attach to oneself-no more so than calling myself an Indian, a feminist, or a woman, for that matter, since all these identities are not simple givens but open to complex ways of being inhabited, and do not guarantee many specific experiences or concerns, even as they shape one's life in powerful ways.[2]

She provides an historical account of why Third World feminists are charged of 'Westernization'. For Narayan, colonialism has played an important role in shaping a contrast picture of both the Western culture as well as the indigenous cultures of the Third World countries. The pictures of different cultures and cultural values were idealized and totalized constructions. Therefore, though Western countries were actively and extensively engaged in colonization and slavery, they projected their culture as superior being based on the ideas of liberty and equality. On the other hand, the culture of Third World countries, for example India was portrayed as inferior and "often problematically equated with aspects of upper-caste Hindu culture, ignoring the actual cultural and religious diversity of the Indian population".[3] The West equated upper-caste Hindu religious culture as Indian culture which was nothing but a distortion of reality. Western culture was considered to be progressive and open while Third World colonized cultures were often seen as inert and static cultures paralyzed by tradition and on the verge of decline.

She explains that - First, largely as a result of critiques of mainstream Western feminism by feminists of color, there is a great deal more caution about generalizing about categories such as "American women" or "European women" without attending to specificities such as class, race, ethnicity, sexual orientation, and religion. However, this lesson of caution about generalization is often quickly forgotten when it comes to "Third-World women"….The

second difference is that problems that affect particular groups of Third-World women are more often assumed to be primarily, if not entirely, results of an imagined and unitary complex called "their Traditions/ Religions/ Cultures"-where these terms are represented as virtually synonymous with each other. As a result, problems that have very little to do with traditions, religions, or culture are represented as if they are the effects of this imagined complex, reinforcing "ethnic" stereotypes and completely misrepresenting the real nature of these problems."[4]

Narayan is against the portrayal of Third World women as victims of their particular culture and their subsequent 'death by culture' because Western feminists differently invoke culture when they explain different forms of violence against Third World women.[5] She states:

... there is a marked tendency to proffer "cultural explanations" for problems within communities of color within Western contexts more readily than there is to proffer "cultural explanations" for similar problems within mainstream Western communities. For instance, female-headed households, teenage motherhood, and welfare dependency have been attributed to "cultural pathologies" within the African American community while "white culture" is seldom indicted for these same problems when they occur in white communities.[6]

References :

1. See Uma Narayan, *Dislocating Cultures: Identities, Traditions and Third-World Feminism*, New York, Routledge, 1997
2. Ibid., pp. 4-5
3. Ibid., p. 15
4. Ibid., p. 50
5. Ibid., pp. 84-85
6. Ibid., pp. 87-88

*****

Human rights' Security of Rural Dalit Women: The Challenges Ahead

Tanu Prakash*

Dalit women are placed at the very bottom of India's caste, class and gender hierarchies. They suffer multiple forms of discrimination – as Dalits, as poor, and as women. The caste system declares Dalit women to be intrinsically impure and 'untouchable', which sanctions social exclusion and exploitation. They are subjugated by patriarchal structures, both in the general community and within their own family. Violence and inhuman treatment, such as sexual assault, rape, and naked parading, serve as a social mechanism to maintain Dalit women's subordinate position in society. In addition, the rural dalit women face double atrocities first of being dalit and second of being women i.e. they suffer both the caste and gender based discrimination. Young women are often married at a very early age and thus unable to continue their education, resulting in high illiteracy rates and the inability tobe self-sufficient and financially contribute to the family.Dalit girls are especially disadvantaged and sufferdisproportionally from the effects of malnutrition, infant mortality and lack of education.

Human rights abuses against Dalit women are mostly committed with impunity. Police personnel often neglect or deny Dalit women of their right to seek legal and judicial aid. In many cases, the judiciary fails to enforce the laws that protect Dalit women from discrimination. During this decade there has been a significant shift in approach to women's advancement and empowerment. While previously the advancement of women was regarded as important for outcomes such as economic development or population policies, more than ever the international community has come to consider

* Research Scholar, Department of Sociology & Social Work, H.N.B.G. University, Srinagar, Garhwal, Uttrakhand

the empowerment and autonomy of women and the improvement of their political, socio-economic and health status as important ends in themselves. This shift in approach reflects a human rights approach to issues of concern to women. Parallel to this shift in approach to women's advancement has been an increased emphasis on the importance of a rights-based approach to planning and programming generally.

Forms of Violenceagainst Dalit Women

(1) **Violence in the General Community** Dalit women are often abused by the general community in the rural areas and this verbal abuse from members of the general community includes derogatory usage of caste names and caste epithets arguably amounting to "hate speech" as well as sexually explicit insults, gendered epithets and threats.

(2) **Violence in the Family** Within the family, domestic violence is prevalent. The total increasing no. of dalit women have recorded regular incidents of domestic violence that span several years of married life. This violence often manifests itself in verbal abuse of the woman, accompanied by physical assault, but also entails sexual abuse including marital rape. Several cases of inter-caste marriages ending in domestic violence reveal caste and gender discrimination against the Dalit wife leading to violence. In most cases where a dalit husband is concerned, the violence takes on a strong patriarchal dimension norms and pressures of married life and "duties" of wives to their husbands ensure that they continue to endure this violence.

The Challenges for Dalit Women in Rural Areas

1. Access Productive Resources

In India, Dalit rural women face serious challenges in carrying out their multiple productive and reproductive roles within their families and communities, in part due to lack of rural infrastructure and lack of access to essential goods and services. They have the highest poverty levels, are landless and depend on the dominant caste for employment, wages and loans. Their access to resources or even their efforts to access them are often met with violence. Due to the intersection of caste, class and gender, Dalit women are subjected to direct and structural violence. Specifically, the structural violence and lack of access to resources perpetuate their poverty and undermine their dignity.Dalit rural women have

very limited access to and control over land, which in turn leads to food insecurity.

2. Social Rights and Basic Services

Dalit women are often met with violence when attempting to assert their rights in areas such as access to housing, drinking water, the public distribution system (PDS), education or open spaces for open defecation. They are even unaware of the fact that health care is a basic human right, thus they are unable to raise their voices to demand it. A significant proportion of Dalit women have lost their lives in the absence of basic health services.

3. Violence Against Women, Trafficking, Sexual Explanation

Dalit women face verbal, physical and sexual violence in the public and private domain. This includes being verbally and physically attacked for any number of reasons in public, e.g. when trying to access public resources or attempting to seek justice after another incident of violence. Dalit women face violence from community members, complicit police personnel, their in-laws and their families. Between norms of female subjugation and cultural norms regarding the "natural" caste hierarchy, women are constantly assaulted and taken advantage of Dalit Women.

4. Women's Access to Justice

Sanctioned impunity on behalf of offenders is a major issue in India, and the police often deny or purposefully neglect and delay Dalit women's right to legal aid and justice.

Some suggestions regarding improvement of condition of rural dalit women

* Regular training and sensitization for police personnel as well as periodic review and assessment ofthe implementation of relevant acts such as the Prevention of Atrocities Act and the Caste-based discrimination and Untouchability Act at the local, district and national levels.
* National Human Rights Institutions in every caste-affected country are encouraged to bring out anannual White Paper to appraise their performance in relation to caste and gender-based humanrights violations.
* Governments should take into account the situation of women and girls in all measures taken to address caste-based discrimination and should adopt specific provisions to ensure

the human rights of women and girls affected by caste-based discrimination. Particular attention should be paid to combating intersecting forms of discrimination in the sectors of education, employment, health care, access to land and personal security.

* Targeted programs for Dalit women must be implemented focusing on key development indicators such as food security, access to clean drinking water, health and sanitation, education, and decent employment.

Conclusion

With the above discussion it can be concluded that violence against women continues at breathtaking rates. The multiple discrimination women experience is also recognized by the Committee on Economic, Social and Cultural Rights (CESCR) in its general comment on the equal right of men and women to the enjoyment of all economic, social, and cultural rights. In this general comment, the Committee notes factors that negatively affect the equal right of men and women to the enjoyment of economic, social, and cultural rights, including the right to adequate housing, to adequate food, to education, to the highest attainable standard of health, and to water. The Committee then sets forth a framework for both formal equality and substantive equality, stating that gender-neutral laws 'can fail to address or even perpetuate inequality between men and women because they do not take account of existing economic, social and cultural inequalities, particularly those experienced by women.

References

1. Commission, N.H. (2004). Report on Prevention of Atrocities against Scheduled Castes: Policy and Performance, Suggested Interventions and Initiatives. New Delhi: NHRC.
2. Ferrior, S. (2009). Human Rights Advocacy on Gender Issues: Challenges and Opportunities.www.jhrp.oxfordjournals.org.
3. Irudayam, A. (1999). Black Paper: Broken Promises and Dalits Betrayed, National Campaign on Dalit Human Rights. Bangalore.
4. Kumar, A. (2013). The Plight of Dalit women: Why it's time to end the caste system both in India and UK. www.blogs.independent.co.uk.
5. Network, N.T. (2013). The situation of Rural Dalit Women. www.ohchr.org.

*****

Socio Economic Impact of Micro Finance in Rural Transformation of Uttarakhand an Empirical Study with Special Reference to Pithoragarh Districts in Kumaon Region of Uttarakhand

Dr. Deepa Rawat*

Pithoragarh is situated in the eastern part of the state and forms the north-eastern part of the Kumaon division. On its north and east lies international border of Tibet and Nepal respectively, while on its south-west touches the district of Almora. It is bounded in the south by district Champawat and ChamoliandBageswar in the west. The total geographical area of the district is 7118 sqkms.DistrictPithoragarh was constituted on February 24, 1960 with 32 Pattis, 30 Pattis from tehsil Pithoragarh and two Pattis from tehsil Almora (At present there are 144 pattis in Pithoragarh district). Lying in the upper Himalayas, Pithoragarh contains within itself varying geographic environments, situated at the altitude between 2000 to 20,000 feet above the sea level, it sprawls in the rugged terrain of the mystic Himalayas.

The district, at present comprises of four tehsil and four towns. District Pithoragarh is not served by railway and communications depend on roads and pathways. District Pithoragarh is totally hilly area. There has been hardly any industrial development in the district. The post liberalization period saw a paradigm shift in the banking sector which coincided with the growth of a silent microfinance revolution in rural India. The National Bank for Agricultural and rural development (NABARD) initiated SHGs Bank linkage programme in 1991 which focused on Self Help Groups (SHGs) as a channel for delivery of micro-finance. The main objective of micro finance institutions is to bring socio economic upliftment

*M.Com, Ph.D& JRF/NET Jun 2011. Post-Doctoral Fellowship of ICSSR, New Delhi at L.S.M. P.G. College Pithoragarh, Uttarakhand

of rural poor by providing them income generating assets through a mix of bank credit and government subsidy. Credit delivering through SHGs has tremendous potential for poverty alleviation and rural development.

Women have been the vulnerable section of society and they constitute a sizeable segment of poor. In Uttarakhand also the condition of women is not economically good. Kumaon region of Uttarakhand has its own geographical challenges. In Pithoragarh district of Kumaon region of Uttarakhand livestock activity especially dairying holds special significance for the SHG involving rural women. More than 70% of the work force is engaged in livestock farming. Dairying has been found to be the most significant economic activity in the micro finance scheme of Self Help Groups in Pithoragarh district of Uttarakhand.Micro credit programmes has been well recognised the world over as an effective tool for poverty alleviation for improving the socio economic conditions of the rural poor. Credit infusion i.e. micro credit disbursement with the help of bank and NGOs is been done in the rural areas of Uttarakhand various banks like Uttaranchal Grameen Bank (UGB), SBI, District Cooperative Bank, Nainital Bank, etc. are helping the micro credit mechanism.

Rural credit in post nationalization India was considered as integral part of socio economic development efforts for the rural areas. The success of any credit programme for rural area depends on the people friendly approach and maximum participation of the work force. Thus Self-Help Groups (SHGs) emerged as the people's own voluntary formed organizations helping in disbursing collateral free micro credit with government's initiatives and subsides. Blocks with the support of District Rural Development Agency (DRDA) have formed self-help groups in Kumaon region also. Social mobilization is done in the form of self-help groups. Linked with microfinance the SHGs approach has now been accepted as an effective intervention strategy for poverty alleviation. Micro finance services are provided by three types of sources:-

1. Formal institution such as commercial banks, Regional Rural Banks (RRBs) and Co-operative Banks.
2. Semi-formal institutions such as NGOs.
3. Informal sources such as money lenders and shop keeper.

Micro finance involves loans without collaterals, group approach results in lowering of transaction cost and higher repayment

rates up to 95% , women empowerment, inculcation of thrift behaviour, small loans for income generation through market based self-employment, borrowers from rural and urban areas especially Below Poverty Line (BPL), regular savings, insurance etc.

The Swarnajayanti Gram SwarojgarYojana (SGSY) model with the help of NABARD is quite active over the years in Uttarakhand and has benefitted the poor. The objectives of SGSY are to provide self-employment to poor villagers in micro enterprises and to raise their income by at least Rs 2000/- monthly and thus help them to raise above poverty from below poverty line .All the BPL families are eligible under the SGSY.

To establish micro enterprises BPL families are identified and organised into self-help groups. A regular monthly meeting of the SHGs is conducted and there is regular savings of all members which is rotated within the group. After six months first grading is done. After the successful completion of first grading revolving fund (4 times the saving of the SHGs or minimum 5000/- or maximum 10,000/- subsidy and Rs 15,000/- as bank loan) is given not exceeding a sum of Rs 25,000/- as loan limit. Second grading is done after six months. Thereafter training (Skill Development Training) and then micro finance is provided by banks for the groups desired micro enterprises like dairying, goat rearing etc.

The following are the stake holders of The Swarnajayanti Gram SwarojgarYojana (SGSY):-

1) Self-employed under BPL category.
2) NGOs
3) Commercial/Regional Rural/Cooperative Banks
4) Rural Development Department Staff (village level to district level).
5) Training centre and trainers.
6) Insurance companies.

During the last six months Pithoragarh district of Uttarakhand was surveyed. Bin and Munakot blockswere visited. There are eight (8) blocks in Pithoragarh district of Uttarakhand. These are - 1) Bin, 2) Munakot, 3) Kanalichina, 4) Didihat, 5)Gangolihat, 6) Berinag, 7) Munsyari8) Dharchula. SHGs members, government and non-government officials, were interviewed with the help of prepared schedule.

The socio economic impact of micro finance was evaluated in randomly selected two blocks of district Pithoragarh namely, Bin

and Munakot. Various financial institutions like SBI Jakh, Nainital Bank, Central Bank, SBI Vadda, SBI Gurna, District Cooperative Bank (DCB), Regional Rural Bank, Uttaranchal Grameen Bank (UGB) etc are helping to disburse micro finance to the various self-help groups and people Below Poverty Line (BPL).Out of the total population of Pithoragarh district of 4, 85,993. The Bin block has 57,216 as population consisting of 28,020 male 29,196 females. The BPL population is 4,921 in Bin block. There are total 460 Self Help Groups in 81 villages which constitute 09 revenue villages.

In Munakot block out of the total 46,030 people 21,781 are males, 24,249 are females and 4,204are BPL families. Munakot block has 173 villages out of which 08 villages have no population thus only 165 villages are populated. There are 411 SHGs where dairy is the prime activity for which micro finance is used. Some people also do the stitching etc.

Overall it was found that micro finance institutions especially banks and Non-Governmental Organisations (NGOs) are helping the people to come out of poverty. Dairying is the main micro enterprises of almost all the SHGs members and BPL households. The social status of the poor has improved a lot under the SGSY scheme due to the rise in income and assets. Thus micro financial institutions have a deep impact in the lives of people of Pithoragarh as it is devoid of other employments due to lack of factories and thus self-employment is the main source of income of people. The DRDA and blocks are helping the SHGs members and other BPL families by providing them subsidies and loan benefit under the SGSY scheme.

References :

1. Dr.Murlidhar A. Lokhanda, Micro Finance Initiatives in India, Kurukshetra, Feb, 2009.
2. Dr.Jitendra A. Rirrao, Rural Women Empowerment through Micro-Finance, Kurukshetra, Feb, 2009.
3. KoulDivy Nina & Mohan Giresh, Women's Self Groups & Micro-Finance, Kurukshetra, Feb, 2009.
4. Prasad R Management Series- Entrepreneurship ship – Concepts & cases ICFAIUniversity
5. Ramani V.V, Women empowerment- Issues & Experiences, ICFAI Books, The ICFAI University press

*****

Impact of E-advertising on Consumers' Willingness

Dr. Ajit Kumar Shukla*

Abstract : E- Adverting is profoundly changing consumer behaviors. People seem to enjoy shopping on the Internet due to e-advertising. E-advertising is information rich and interactive. It appeals to information hungry buyers and analytical buyers. It allows buyers and current customers to search and locate the information they need quickly. In this research paper it has been tried to find out the impact of e-advertising on various genders.

Keywords: Advertising effectiveness, Consumer perception, Gender, Customer benefit, Internet

Introduction : The use of electronic data and application for promotion of ideas, goods and services to disseminate information among the potentials customers. Advertising is a worldwide industry that, until now, has been mainly a one-way street, with consumers passively absorbing advertising messages. Advertisers hoped that potential buyers would remember their slogan or jingle long enough to make a trip to the store and purchase the product.

This has changed with the advent of interactivity. The new concept of 'interactivity' has overpowered the traditional concept of advertising, by putting the buyer in the driver's seat. Interactivity allows consumers to increase their control over the buying process. We are all deluged with an overflow of data. We long for a sense of mastery over the information that washes over us. Given the opportunity, we will be more selective about the kind of information we choose to receive. Interactivity gives us that option. Thus, the audience is not captive any more, and the marketers would have to work harder than before to entice them. The marketing efforts will have to be information-rich and user-friendly. Web based advertising has become an important part of a company's media mix. Numerous companies are committing large advertising budgets to the Internet.

*Professor, Department of Commerce, Faculty of Commerce and Management Studies, Mahatma Gandhi Kashi Vidyapith, Varanasi. U.P.

Literature Review

The internet is playing a more and more important role in the field of E-advertising. It is obvious that e-advertising is vital m mstrurment to the Indian marketing industry. A few experts have manifested their ideas on e-advertising. They are:

Caliser(2003) in a research paper titled web advertising vs other media: young consumers' view found web site as the most distinctive as compared to others like radio, TV, outdoor and press. Websites found to be complementary to other media. Berthonet. et al. (1996) described the World Wide Web as a new medium with low setup cost, global reach, interactive and easy to enter and independent of time. It is providing remarkable opportunity to the marketers and advertisers to communicate with new and existing markets in an integrated manner. Avery et al. (1998) in their research paper compared interactive advertising on a new media with traditional advertising on traditional media and argued that sometime interactive is not better as it may interrupt the process of persuasion.

Rahman (2012) in one of his study on Dynamics of consumers' perception, demographic characteristics and consumers' behavior towards selection of a restaurant: an exploratory study on Dhaka city consumers found that age, gender and income are the major factors affecting consumers' perception. Wolin, Lori D., Korgaonkar, Pradeep, (2003) in their research paper titled "Web advertising: gender differences in beliefs, attitudes and Behavior" found that males and females use Internet for different reasons Males hold positive belief about web advertisements and are more likely to make web purchases.

Objectives of the Study

The objectives of this study are following:

1. To study the impact of Gender on consumers' willingness towards E advertising.
2. To elaborate the role of gender on consumers' willingness towards E advertising.

Hypothesis

The objectives of the study are being tested with the help of following hypothesis: **H_1:** Gender of consumers does not impact consumers' willingness towards E-advertising regarding its Informational Value. **H_2:** Gender of consumers does not impacts consumers' willingness towards E- Advertising regarding its Trustworthiness

Reasons for Growing Importance of E-advertisements

Following are the reasons for the growing importance of e-advertisements:

1. People increasingly prefer to surf the Internet rather than watch TV.
2. The target audience goes to the advertisement, rather than the other way around.
3. Development of business search engines by companies such as C2B Technologies, which aim to link buyers with online bargain sites for over a million products for comparison-shopping purposes.
4. Yahoo! has a business unit which offers contests and prizes to online participants, which drive players to the websites of different clients. To play, participants must provide certain data, including their preference of advertisements and tastes, which presents a valuable database as to customer preferences.
5. The Internet is not geographically restricted. Amazon.com sells 20 percent of its books to foreign destinations, whereas a physical book store serves an area of only a few square miles.

Data Analysis

Table 1: Gender of Respondent towards Informational Value of E-Advertising

Gender	Perception towards Informational Value of E-Advertising			Total
	Agree	Neutral	Disagree	
Male	24	18	10	52
Female	19	14	8	41
Total	43	32	18	93

Source: Survey Data

(Chi-square (x^2) = 0.00255983, degree of freedom = 2, 5% level of significance, Table value=5.99). The calculated value of X^2 is less than the table value hence the hypothesis (H_1) gets accepted.

Table 2: Gender of Respondents towards Trustworthiness of E-advertising

Gender	Perception towards Informational Value of E-Advertising			Total
	Agree	Neutral	Disagree	
Male	21	20	11	52
Female	18	17	6	41
Total	39	37	17	93

Source: Survey Data

(Chi-square (x^2) = 0.91654664, degree of freedom = 2, 5% level of significance, Table value=5.99). The table value (p-Value) of X for 2 degree of freedom at 5 percent level of significance is 5.99. The calculated value of X^2 (0.91654664)is lesser than the table value hence the hypothesis (H_2) gets accepted.

Measuring the Effectiveness of E- Advertising : As more companies rely on their websites to make a favourable impression on potential customers, the issue of measuring website effectiveness has become important. Mass media efforts are measured by estimates of audience size, circulation, or number of addressees. When a company purchases mass-media advertising, it pays a dollar amount for each thousand persons in the estimated audience. This pricing metric is called cost per thousand or cost per metric (CPM) in short for cost per thousand impressions.

In reality, measuring Web audiences is more complicated because of the Web's interactivity and also because the value of a visitor to an advertiser depends on how much information the site gathers from the visitor (for example, name address, e-mail address, telephone number, and other demographic data). Since each visitor voluntarily provides or refuses to provide these bits of information, all visitors are not of equal value. Internet advertisers have developed some web-specific metrics, described in this section, for site activity, but these are not generally accepted and are currently the subject of debate. When a visitor requests a page from the website, it is counted as one visit. Further page loads from the same site are counted as part of the visit for a specified period of tie. This period of time is chosen by the administrators of the site and is dependent on the type of the site. A museum site would expect a visitor to load multiple pages over a longer time period during a visit, and would use a longer visit time window. The first time a particular visitor loads a website page is called a trial visit; subsequent page loads are called repeat visits. Each page loaded by a visitor counts as a page view. If the page contains an ad, the page load is called an ad view. Some Web pages have banner ads that continue to load and reload as long as the page is open in the visitor's Web browser. Each time the banner ad loads is called an impression, and if the visitor clicks the banner ad to open the advertiser's page, that action is called a click, or a click-through. Banner ads are often sold on a cost per thousand impressions or CPM basis. Rates vary greatly and depend on how much demographic information the website obtains about its visitors. One

of the most difficult things for companies to do as they move on the Web is to determine the costs and benefits of advertising on the Web. Many companies are experimenting with new metrics they have created that consider the number of desired outcomes that their advertising yields. For example, instead of comparing the number of click-throughs that companies obtain per dollar of advertising, they measure the number of new visitor to their site that buy for the first time after arriving at the site via a click-through. They can then calculate the advertising cost of acquiring one customer on the Web and compare it to the cost of acquiring one customer through traditional channels.

Conclusion : E-advertising is a fantastic way to interact and communicates with potential buyers. Get connected to your potential customers through interactive platforms like Facebook, Twitter, LinkedIn and get the desired attention for your services and products. In India, E-advertising is increasing at a fast pace. There are whole bunch of shopping sites in India. People use those sites for things from electronic gadgets, books to fashion apparels etc. In nutshell, it can be astiulated that E-advertising is very helpful for advertisers and users. It motivates the people to transact the products from nook and cranny of the world.

References:

1. Avery, AlexaBezjian, Calder, Bobby, Iacobucci, Dawn (1998), " New Media Interactive vs. Traditional Advertising", Journal of Advertising Research, pp. 23-32.
2. Berthon, Pierre, Pitt, Layland F, Watson, Richard T. (1996), "The WWW as an Advertising Medium", Journal of Advertising Research.
3. Caliser, Fethi (2003), "Web Advertising vs. other media: young consumers' view ', Internet Research, Vol. 13, No. 5, pp. 356-363.
4. Rahman, Muhammad Sabbir, (2012), "Dynamics of consumers' perception, demographic characteristics and consumers' behavior towards selection of a restaurant: an exploratory study on Dhaka city consumers", Business Strategy Series, Vol. 13, No. 2 pp. 75-88
5. Shukla, Ajit K. (2013), Marketing Management (2nd Edition), Vaibhav Laxmi Prakashan, Varanasi.
6. Wolin, Lori D., Korgaonkar, Pradeep, (2003), "Web advertising: gender differences in beliefs, attitudes and behavior", Internet Research, Vol. 13, No. 5, pp. 375-385.
7. www.marketingpower.com

*****

Arresting the right Equilibrium: Tradition and Innovation in *The Waste Land* of T.S.Eliot

Dr. Abhishek Tiwari*

Puranamityeo na sadhu sarvam, na chapi kavyam navmityavadyam
Santah pareekshyanyataratbhajante, moodhah parpratyayaneya buddhih.

[Everything that is customary can't be deemed virtuous because of its being time-honoured and what is contemporary can't be affirmed meritless owing to its newness. The man of sense examines the merit in both whereas the common man acts as per the suggestions of others.]

(Kalidasa, s *Malvikagnimitram*, 1/2)

Tradition, without any doubt, plays a very noteworthy role in the making of a modern world. T. S. Eliot, a great poet and critic of the modernist era, will ever be credited for having carefully blended both with a view to imparting a new vision to creative writing. His effort was epoch making in the sense he initiated innovations with form and content in his literatures that immensely suited the readers of the time who had the horrendous experience of trauma and tribulations of the First World War (1914-18).

Eliot's 434 lines poem *The Waste Land*, published in 1922, can be deemed as the literary manifesto of the time that proved its worth as a great work of art despite its obscurity at numerous levels. In fact its obscurity imparted it a classic position. It must be borne in mind that the poem seeks inspiration from Miss Jessie L. Weston's book based on Grail legend titled *From Ritual to Romance* and James Fraser's magnum opus *The Golden Bough.* Regarding the theme of the poem Vasant A. Shahane observes, "The theme of the poem encompasses simultaneously several levels of experience arising out

*Assistant Professor of English, Sri L.B.S.R.S.Vidyapeetha (Deemed University) Qutab Institutional Area, New Delhi

of various waste lands: The waste land of religion in which there are rocks but no water; the waste land of the spirit from which all moral and spiritual springs have evaporated; and the waste land of the instinct for fertility where sex has become merely a mechanical means of animal satisfaction rather than a potent, life-giving source of regeneration"(Introduction to *The Waste Land* 13).

Divided into five sections the poem unravels a saga of experiences at the level of human consciousness globally. It explores the psychological dilemma of the post war human being who finds himself/ herself confined to the ruthless world of multiculturalism and sordid aspirations. Through the very epigraph to the poem, Eliot intends to suggest the central theme of the poem that is— desire to die. The intensity of complexities and frustration is so high that the dwellers of the waste land are left with no option but spiritual haven only. Thus, the flow of the poem is from problems to solution. The observer of the poetic sections, Tiresias, like Indian *Devarshi* Narada, analyzes and explores various dimensions of the actions of people. Since Eliot had great fascination for the intellectual treasury of India in the form of her scriptures, like the *Upanishadas*, *Vedas*, *Bhagvad-Gita*, he finally takes delight in asserting the use of the spiritual code of conduct of the East to illuminate the materialistically motivated sensibilities of the West.

The first section entitled The *Burial of the Dead* is the poet's delineation of the idea of changing attitudes with the passage of time. The very starting lines are suggestive of shift in taste owing to drastic changes in social and political order. That was deemed once soothing has become uglier. Eliot writes:

April is the cruellest month, breeding
Lilacs out of the dead land, mixing
Memory and desire, stirring Dull roots with spring rain.
Winter kept us warm" (71)

The month of April about which Geoffrey Chaucer waxed lyrical in his *General Prologue to the Canterbury Tales*, has now turned cruel and incapable to impart the romantic happiness. It bears the conflict between memory and desire. Spring rains are powerless of making plants green and beautiful because of dull roots. Death, death in life, life in death are the themes even a common reader view. Further, when the persona Marie says, "Bin gar keine Russin,

stamm' aus Litauen, echt deutsch."(71) she unravels the rootlessness of the diasporic kingdom. She is the embodiment of boredom and tension. The references to Madame Sosostris and Belladonna further illustrate the sordid pictures of society. The metaphor of death is brilliantly projected in the setting of London, which the poet considers to be adulterated depicting the double standard of the inhabitants of the city. See the following lines,

"Unreal City
Under the brown fog of a winter dawn,
A crowd flowed over London Bridge, so many,
I had not thought death had undone so many" (73).

V. de. Sola Pinto observes, "The central conception of The Waste Land is sexual impotence used as a symbol for the spiritual malady of the modern world. This symbol is developed by a myth which had been much studied by contemporary anthropologists" (Pinto 152).

A Game of Chess is the second section that opens with the glorious picture of a fashionable lady's way of life and gives the image of treacherous act of seduction of Philomel by King Tereus. Game is used here as a means to hide the heinous act of rape and make the people ignorant of the brutal act. The title suddenly evokes the image of the game of dice played between mythological Pandavas and Kauravas in the *Mahabharata* that ultimately was the cause of utter destruction in the history of mankind. However in the context of modern times the section reveals the atrocious nature of sex. Sex that was once used as a tool for spiritual elevation (*Kama* as one of the four *Purusharthas*has) now has been condensed to its lustful grade. A modern woman's sense of hysteria is well projected in the following lines:

"My nerves are bad to-night. Yes, bad. Stay with
Me. Speak to me. Why do you never speak? Speak.
What are you thinking of? What thinking (75)?

The woman, it seems, finds herself trapped in the emotional and psychological boundary and bears a sense of deeper irritation of sexual nature like the ladies even in our times face who stay all alone in the metropolitan culture. What yields as ultimate result is nothing. In fact the poet suggests the futility of the world as Jagatguru Sankaracharya stated, *Brahmasatyam jaganmithya,*

jeevobrahmaionaparah that means only Brahma(God) is true and the world is merely an illusion:

"What is that noise now? What is the wind doing?
Nothing again nothing.
'Do
'You know nothing? Do you see nothing? Do you
remember Nothing?'"(75)

Eliot has very beautifully referred to the tragedies of William Shakespeare like *King Lear*, *Hamlet* to bring about the catastrophic thesis of human destiny:

"OOOO that Shakespeherian Rag-
It's so elegant - So intelligent
'What shall I do now? What shall I do?
I shall rush out as I am, and walk the street
With my hair down, so. What shall we do tomorrow?
What shall we ever do?'(76)

The above lines are very suggestive of the perplexed pessimism of the wastelanders who stand terribly insecure. They have no answers to their queries. A deeper sense of dissatisfaction is viewed.

The Fire Sermon is the portrayal of the mechanical means that the wastelanders undertake to suit their materialistic causes. Sexual rendezvous are without emotional bond:

"Twit twit twit Jug jug jug jug jug jug
So rudely forc'd. Tereu (80)

The people however are not in condition to connect one with another as if time has turned out of joint in their lives and they are emotionally paralyzed,

"On Margate Sands. I can connect
Nothing with nothing."(84)

Death by Water 'is the fourth section that talks about death as a means of another life — a source of regeneration. It is didactic in tone and suggests the materialistically engaged people to be beware of it because it happens to be the ultimate end of a person. As Shelley in his poem "Ozymandias' puts forward the futility of worldly glory subject to decay, Eliot too declares:

"O you who turn the wheel and look to windward,
Consider Phlebas, who was once handsome and tall as you."(85)

Last but not the least, *What the Thunder said* can be well enunciated as the solution to the problems that Eliot raised. It is like resting point to the series of tougher experiences. Eliot takes delight in asserting three *sutra vakyas* from the *Brihadaranyaka Upanishada* as *Datta* (give) *Dayadhvam* (sympathize), *Damyata* (self restraint) that will have the effect of eternal medicine to the sufferers globally if they practise accordingly. Eliot, an ardent supporter of tradition writes the "Ganges" as "Ganga" as "Himavant" for the Himalayas to give it a traditional touch. The final submission is traditional Upanishadic ending,"Shantih shantih shantih"(90) enunciating Eliot's preference of the accurate version of the *mantra* to merely its translation.

Finally it can be said that Eliot through this poem proved that innovation can be of higher merit only when it takes into cognizance the virtues of tradition. The famous critic Rajnath aptly writes, "Tradition is not only much more valuable but also much more powerful and pervasive than the individual talent. The individuality of the poet is derived from tradition and after he has completed his task he gets absorbed into it" (Rajnath 65). It would be pertinent to end the paper with the words of David Daiches who observes in *The Waste Land* "both examples and symbols of the failure of modern civilization—scenes of desolation, moral squalor, and social emptiness—which are in turn symbolically related to the anthropological and religious themes," and further asserts, "Eliot endeavoured to project a complete view of human civilization, of human history and human failure, and of the perennial quest for salvation. No modern poem has received so much comment and explication" (Daiches 1133).

References :

1. Eliot, T.S. *The Waste Land*. Ed. Vasant A. Shahane, Chennai: Oxford University Press. 2001(Eleventh impression). Print.
2. Daiches, David. *A Critical History of English Literature* Volume IV, New Delhi: Allied Publishers Private Limited, 2002. Print.
3. Rajnath . "The Death of the Author: T. S. Eliot and Contemporary Criticism, "*Indian Response to Literary Theories*, Ed. R. S. Pathak, New Delhi: Creative Books, 1996. Print.
4. Pinto, V. de Sola. *Crisis in English Poetry 1880-1940*. London: Hutchinson and Co. Ltd., 1967. Print.

*****

Socialist Feminism : An Analytictical Study

Dr. Anish Kumar Verma*

Feminism at its simplest connotes a movement for social, political and economic equality of both the sexes, i.e., men as well as women. It strives to bring gender iequity in society by revealing the historical reality that women have been subordinate to men since ages.[1] Feminism does not have a single theory or form of practice, but consists of many variations on a theme.[2] Defining feminism is a very complex task. Any single definition of feminism is very difficult "as it was never a uniform set of ideas: the aims and character of feminist struggles were hotly contested from the outset"[3]. It is actually an amalgam of different fluid ideas which cannot be encapsulated in a single phrase. There is no such definition of feminism which can be applied at all times and at all places. "Feminisms differed in their form and character in different geographical contexts"[4]. As Maggie Humm said that it could only be 'misleading to offer precise definitions of feminism because the process of defining is to enlarge, not to close down, linguistic alternatives'[5]. The meaning and form of feminism varies from society to society and from time to time. Feminism has fragmented into a number of schools of thought

Socialist Feminism

Socialist feminists have been arguing that the reformist objectives of the liberal feminists are not adequate. Therefore, they have been trying to restructure the family and put an end to domestic slavery. Whereas Liberal feminism emphasizes on granting equal legal and political rights to women and sees the oppression of women as rooted in the unjustified exclusion of women from the male-dominated public arena, Socialists feminists locate women's subordination in the very structure of society. Alison Jaggar states:

> In its analyses of contemporary society, socialist feminism goes beyond conventional definitions of

*Editor, Research Dicourse, Varanasi, U.P.

> "the economy" to consider activity that does not involve the exchange of money. Within its concept of productive activity, therefore, it includes the procreative and sexual work that is done by women in the home. In analyzing all forms of productive activity, socialist feminism supplements the analytic tool of class with the additional conceptual tool of gender. It perceives that human productive activity is organized invariably around a sexual division of labor and that the specific historical form taken by the sexual division of labor has always been basic in determining the historically prevailing constitution of human nature. Socialist feminism's distinctive contribution to our understanding of human nature is its recognition that the differences between women and men are not pre-social givens, but rather are socially constructed and therefore socially alterable.[6]

The Socialist feminists argue that the condition of women is over-determined by the structures of production, reproduction and sexuality and the socialization of children. There is the need to bring about changes in women's status and function in all these if they are to achieve full liberation. Moreover, women's psyche must also be transformed because only then will women be liberated from the kind of patriarchal thoughts that undermine their self-concept and make them always the 'Other'.[7]

Feminists of the Socialist tradition claim that equality in the domestic or private sphere would bring about an end to the subjugation of women. They see both class and gender as equally important in creating inequality. Unlike Liberal feminism's emphasis on individual rights, Socialists feminists argue that for a just world order, the idea of communitarianism should be developed which would prove helpful in collective child-rearing, caring and household maintenance. Socialist feminists believe that individual opportunity alone will not lead to an egalitarian world; the realization of human potential will only be achieved through the restructuring of personal (e.g. family) and public (e.g. employment) experiences of men and women.

The feminists of the socialist tradition question the reduction of women merely as a machine for reproduction and doing the household chores. They criticize the patriarchal organization of the society and the traditional family roles. Unlike Liberal feminists who

focus on individual empowerment, Socialist feminists focus on collective change and empowerment. Major Socialist feminists include Sheila Rowbotham, Zillah Eisenstein, Heidi Hartmann, and Juliet Mitchell etc.

Post-modern feminists have criticized socialist feminism's effort of building a unique feminist standpoint which will represent how women see the world. They find it neither desirable nor feasible. "It is not feasible because women's experiences differ across class, racial, and cultural lines. It is not desirable because the "One" and the "True" are philosophical myths that traditional philosophy uses to silence the voices of the many. Feminist philosophy must be many and not One. The more feminist thoughts, the better."[8]

It is obvious from the above discussion that feminism is not a unified body of thought. it is also true that women everywhere share some basic sameness such as patriarchy, logocentrism, sexual division of labour etc.

References :

1. See Tim Delaney, Contemporary Social Theory: Investigation and Application, New Delhi, Dorling Kindersley (India) Pvt. Ltd., 2008, p. 202.
2. Susan M. Okin and J. Mansbridge, Feminism, Vol.1, England, Edward Elgar Publishing, 1994, p. ix.
3. Joanne Hollows, Feminism, Femininity and Popular Culture, Manchester, Manchester University Press, 2000, p.3.
4. Ibid.
5. Maggie Humm, The Dictionary of Feminist Theory, London, Harvester Wheatsheaf, 1989, p. xiv.
6. Alison M. Jaggar, Feminist Politics and Human Nature, Maryland, Rowman & Littlefield Publishers, 1983, pp. 303-304.
7. Robert Audi (ed.), The Cambridge Dictionary of Philosophy (2nd Edition), Cambridge, Cambridge University Press, 1999, p. 306.
8. Donald M. Borchert (ed.), Encyclopedia of Philosophy (2nd Edition), Vol. 3, USA, Thomas Gale, 2006, p. 563.

*****

ISSN 2277-2014

RESEARCH DISCOURSE : RULES AND REGULATIONS FOR RESEARCH WORKES

Research papers based on new, intresting and original research work from Social Science, Technical Science and Modern Science, are invited from Researches, Professors and Writers for publication in Research Discourse international research journal (Quarterly). Research papers schould be critical and analytical of old and new studies in the related subjects, which promotes the knowledge of the study. Research papers should be rich of phylosophical ideas and developmental issues. Research papers will be sent to subject experts for review before publication, the publication of research papers will be final only after approval of subject experts.

Please keep in mind the following points at the time of sending your research papers:

1. Research papers can be writier either in Hindi or English.
2. Research Paper should not be of more than 1700 words.
3. Research paper on the International lstandard basis should be typed only on one side paper of size 8.5" x 11" in double spacing. A summary of research paper of 250 words must also be sent alongwith Research papers.

(a) One copy of computer typed Research Paper/Article along with C.D. should be sent to the Editor or E-mail on researchdiscourse2012@gmail.com in word file.

(b) Please use Kruti Dev 010 font size 13 for Hindi and Sanskrit language research paper and 'Times New Roman' font size 11 for English research papers.

4. Please mention in brief the name of research methodology if adopted for preparing the research paper.
5. If table, chart, graph etc. have been used for analysing the facts, they should be attached on proper places and take care while giving reference.
6. The details of references should be attached on a separate paper in the last of the paper/article the standard farm is as follows:

(a) In case of book, name of writer, year of publication name of book (high light), Volume no., name of the publisher with full address and concerning page number should be given.
For Example – Desai, A.R. 1979, "**Pasent Struggle in India**", Oxford University Press, New Delhi.

(b) For research papers – Name of the writer , year of Publication, title of the paper (in double inverted coma), name of the research journal (high light), Volume, Number, Page Number should be given.
For example – Bajpayee, K.D. "Location of Pawa", **Puratatva**, Number 16, 1985-86, Indian Archeological Society, New Delhi, page 40. If more than one reference has to be given for the same author in the same year after first reference folloowing guidince should be used for all other references –
Bajapayee K.D. 1985-86.

(c) Full detail should be given in the first reference. After first reference, 'Ibid', should be used for more than one but the same reference with the name of the author and year of publication of research article and books.

7. For review of books published during last two years please send two copies of book.
8. Please also send a article of unpublished research papers.
9. The decision of the editor in regard to the selection of diagramms, graphs etc. will be final.
10. Writers/teachers/researchers are requested to contact, at least once, the editor on the mob ile phone number 9453025847 or 8687778221.

Editor
Dr. Anish Kumar Verma
B.28/70, Manas Mandir
Durgakund, Varanasi-221005
Mob. : 09453025847 / 08687778221
Email : researchdiscourse2012@gmail.com
anish.verma242@gmail.com

Published by :
South Asia Research & Development Institute
Varanasi, U.P. (INDIA)